

महिलाओं के प्रति हिंसा

माननीय उच्च न्यायालय एवम्
उच्चतम न्यायालय के केसों का संकलन

महिलाओं के प्रति हिंसा

माननीय उच्च न्यायालय एवम्
उच्चतम न्यायालय के केसों का संकलन



Centre for Social Justice



Lawyers for Change



महिलाओं के प्रति हिंसा

© Centre for Social Justice 2015

Copies : 500

First Edition : October 2015

Compiled by : Research and Capacity Building Unit
CENTRE FOR SOCIAL JUSTICE
C-106, Royal Chinmay, Opp. ICO Pump,
Next to Simandhar Tower, Off Judges' Bungalow Road,
Bodakdev, Vastrapur, Ahmedabad - 380054 Gujarat INDIA

Educational material for easy circulation

महिलाओं के प्रति हिंसा

उच्च न्यायालय के मामले:

नवनीत अरोड़ा बनाम सुरेंद्र कौर व अन्य 10 सितंबर, 2014: FAO (OS)196/2014 ...7	
श्रीमती लिपिका डेविड बनाम श्री विक्टर डेविड, 7 अगस्त 2015 पृष्ठ नंबर 1/10, CC No: 258/18	
विशिष्ट केस ID: 02406R0737320128	

सुप्रीम कोर्ट के मामले:

रजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, 26 फ़रवरी 2015.....9	
बचनी देवी बनाम हरियाणा राज्य (2011) 4 SCC 42710	
पठान हुसैन बाशा बनाम ए.पी. राज्य, (2012) 599 8 SCC 59412	
कुलवंत सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य (2013) 4 SCC 17714	
रमिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 12 SCC 582	
सुरेश सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 16 SCC 35316	
शेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2015 1 SCALE 250 at 26218	
शंकर किशनराव खाड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य, 25 अप्रैल 2013.....20	
एजी बनाम शिव कुमार यादव और अन्य 10 सितंबर, 2015.....21	
परमिंदर लडका पोला बनाम दिल्ली राज्य, 16 जनवरी 2014.....22	
मोहम्मद हारून एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 26 मार्च 2014.....23	
मध्य प्रदेश राज्य बनाम मुन्ना शंभू नाथ, 18 सितंबर, 201524	

भद्रेश बिपिनभाई सेठ बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 1 सितंबर 2015	25
विक्रम सिंह विक्की व अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 21 अगस्त 2015.....	26
पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 8 मई 2015	28
दीपक बनाम हरियाणा राज्य, 10 मार्च 2015	29
मो. अली गुड्डू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 10 मार्च, 2015.....	30
सतीश कुमार जयंती लाल डबगर बनाम गुजरात राज्य, 10 मार्च 2015.....	32
रवींद्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 26 फ़रवरी 2015.....	33
भावनाभाई भायाभाई पनेला बनाम गुजरात राज्य, 4 फ़रवरी 2015	34
चरणजीत बनाम पंजाब राज्य 2013 AIR SCW 4105 - बलात्कार	35
दीपक गुलाटी बनाम हरियाणा राज्य 2013 AIR SCW 2302 - बलात्कार	36
लिल्लु बनाम हरियाणा राज्य 2013 AIR SCW 2987 - बलात्कार	38
पुलिस उप महानिरीक्षक बनाम एस. समुथीराम 2012 AIR SCW 6484 - छेड़खानी..	39
मो. हारून और अन्य बनाम भारत संघ - संघर्ष के दौरान बलात्कार	40
पंचानंद मंडल बनाम झारखंड राज्य (2013) 9 SCC 800 - दहेज हत्या.....	41
तुम्माला वेंकटेश्वर राव बनाम एपी राज्य (2014) 2 SCC 240- दहेज हत्या.....	42
मोदिन साब कासिमसाब बनाम कर्नाटक राज्य (2013) 4 SCC 551- दहेज हत्या	43
सीमा लेपचा बनाम सिक्किम राज्य (2013) 11 SCC 641- यौन उत्पीड़न	44
श्रीमती शशिप्रवा बिन्धानी बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य, 25 अप्रैल 2012 का उड़ीसा उच्च न्यायालय का फैसला - चुड़ैल (डायन) शिकार	44
मोहन लाल बनाम पंजाब राज्य (2013) (12) SCC- सामूहिक बलात्कार.....	45

डी.एस. गेवाल बनाम विम्मी जोशी 2009 (1) SCALE 54 - यौन उत्पीड़न	47
विशाल जीत बनाम भारत संघ 1990 (3) SCC 318- तस्करी.....	48
प्रेरणा बनाम और महाराष्ट्र राज्य अन्य 2003 (2) BLR 562- अनैतिक तस्करी.....	49
अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड एवं अन्य बनाम चंद्रिमा दास व अन्य (2000) 2 SCC 465- बलात्कार	51
दिल्ली घरेलू कामकाजी महिला फोरम बनाम भारत संघ (UOI) और अन्य 1995 (1) SCC 14 - बलात्कार.....	53
पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य 1996 (2) SCC 384 बंद कमरे में मुकदमा	55
बलवंत सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य 1987 (2) SCC 27- बलात्कार	55
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम गांगुला सत्या मूर्ति 1996 (10) SCC 550 - बलात्कार.....	56
पी. रथीनम बनाम भारत संघ (UOI) व अन्य, रिट याचिका (आपराधिक)- 1989 supp (2) SCC 716- बलात्कार.....	57
विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (1997) 6 SCC 241- यौन उत्पीड़न.....	57
परिधान निर्यात संवर्धन परिषद बनाम ए.के. चोपड़ा (1999) 6 SCC 241- कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न.....	58
CEHAT बनाम भारत संघ और अन्य AIR 2001 SC 2007-कन्या भ्रूण हत्या.....	59
हेम चंद बनाम हरियाणा राज्य 1994 (6) SCC 727- दहेज	60
डॉ. जी.एम. नटराजन बनाम राज्य और अन्य 1995 Cr.lj 2728 मद्रास कोर्ट - दहेज	60
पवन कुमार और अन्य बनाम हरियाणा राज्य 1998 (3) SCC 309- दहेज.....	61

सानाबोइना सत्यनारायण बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य CA No. 1227 2002	
दहेज	61
राजस्थान राज्य बनाम हेत सिंह 2003 2 SCC 152, सती	62
श्रीमती शांति और अन्य बनाम हरियाणा राज्य 1991 AIR 1226 - दहेज हत्या	63

घरेलू हिंसा से संबंधित मामले

वंदना बनाम टी. श्रीकांत और कृष्णमाचारी 2007 (51) सिविल सीसी (मद्रास)	64
सुनील मदान बनाम रचना मदान और अन्य Cri M.C. 3071/2008	65
एम. जयम्मा बनाम ए.पी. राज्य आपराधिक याचिका संख्या 3873/2009	66
मंगेश सावंत बनाम मीनल विजय भोसले आपराधिक रिट याचिका सं. 905/2010	66

महिलाओं के खिलाफ हिंसा

परिभाषा

"महिलाओं के खिलाफ हिंसा" को मानव अधिकारों का उल्लंघन और महिलाओं के खिलाफ भेदभाव का एक रूप समझा जाता है और इसका अर्थ है लिंग-आधारित सभी तरह के कृत्य , जिसके परिणाम स्वरूप या संभावित परिणाम महिलाओं का शारीरिक , यौन, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नुकसान या हिंसा होता है जिसमें ऐसे कृत्यों के खतरे , बलात्कार या स्वतंत्रता का मनमानी वंचन शामिल होता है भले ही वे सार्वजनिक रूप से हों या निजी जीवन में हों।

उच्च न्यायालय के मामले

नवनीत अरोड़ा बनाम सुरेंद्र कौर व अन्य
10 सितंबर, 2014: FAO (OS) 196/2014

नवनीत अरोड़ा की शादी गुरप्रीत सिंह से हुई थी, वह अपने माता-पिता हरपाल सिंह और सुरिंदर कौर के साथ एक परिवार के रूप में रह रहा था। उसके भाई रमन पाल सिंह और उसकी बहन शेरी भी उसी घर में रह रहे थे। रसोई एक थी। दोनों बेटे और उनके पिता का संयुक्त कारोबार था और संयुक्त व्यापार की आय का इस्तेमाल रसोई चलाने के लिए किया जाता था। वे सभी ग्राउंड फ्लोर पर रह रहे थे। शेरी की शादी हो गई और उसने घर छोड़ दिया।

नवनीत ने गुरप्रीत से शादी की थी और रमन पाल ने नीतू से शादी कर ली। दोनों बहुएं न केवल अपने-अपने पतियों की बल्कि अपने ससुराल वालों की कंपनी में शामिल हो गई बल्कि संयुक्त परिवार के उसी घर में यानी ग्राउंड फ्लोर , बी 44, विशाल एन्क्लेव, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली में रहने लगे। सभी साथ-साथ रहते थे। नवनीत ने संयुक्त परिवार का घर कभी नहीं छोड़ा। उसके पति की मृत्यु के समय भी वह घर में रह रही थी। वह आज तक भी वहां रह रही है। इन परिस्थितियों में सूट संपत्ति में निवास करने के उसके अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता है , और स्वामित्व के मुद्दों का संबंध है, हमने पहले ही देखा है कि से ही घरेलू हिंसा अधिनियम , 2005 से महिलाओं के संरक्षण के अंतर्गत निवास का अधिकार, इसका उस पर कोई असर नहीं होगा।

वह सिविल कार्यवाही में इसे लागू कर सकती है। लेकिन साझा घर में निवास के उसके अधिकार को नकारा नहीं जा सकता। हम अपील की अनुमति देते हैं और दिनांक 21 मार्च, 2014 के आदेश को रद्द करते हैं। हम पक्षकारों से कहेंगे कि वे अपने विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करें क्योंकि यथास्थिति सबके लिए हानिकारक है और सुरिंदर कौर और उसके बेटे रमन पाल सिंह प्रमुख पक्षकार हैं अतः हम उनसे पहला कदम उठाने के लिए कहते हैं।

**श्रीमती लिपिका डेविड बनाम श्री विक्टर डेविड,
7 अगस्त 2015 पृष्ठ नंबर 1/10, CC No: 258/1
विशिष्ट केस ID: 02406R073732012**

मामले के तथ्य: पीड़िता की शिकायत है कि ईसाई संस्कार और रिवाज़ के अनुसार 20.11.2002 को प्रतिवादी से उसकी शादी के बाद, उन्होंने पति और पत्नी के रूप में एक साथ रहना शुरू कर दिया, लेकिन प्रतिवादी अन्य महिलाओं के साथ विवाहेत्तर संबंध रखता था और पीड़िता ने उसके लिए आपत्ति की तो उसके साथ गाली-गलौच की और पीटा। यह भी आरोप लगाया गया कि प्रतिवादी ए.सी. मैकेनिक के रूप में काम करता है और वह विदेश भी चला गया था और काफी धन कमाया था लेकिन पीड़िता को इसमें से एक पैसा भी नहीं दिया बल्कि वह अपने बड़े भाई एरिक फ्रेंकलिन डेविड को पैसा भेजता रहता था।

अदालत ने कहा: चूंकि पीड़िता प्रतिवादी की पत्नी के पास अपने व अपनी नाबालिग बच्ची की देखभाल के लिए कोई भी साधन नहीं है और इसको ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी के पति होने के नाते कानूनी कर्तव्य है कि वह अपनी नाबालिग बेटी का पालन-पोषण करे। प्रतिवादी की आय 16,000 रुपए प्रति माह मानते हुए, संतुलन सुविधा के पैमाने पर, मैं इसे खुद के और अपनी नाबालिग बच्ची के पालन-पोषण के लिए प्रतिवादी से पीड़िता को 7,000 रुपए प्रति माह की राशि देना उचित समझता हूं। यह राशि याचिका दाखिल करने की तिथि से अगले आदेश तक देय होगी।

सुप्रीम कोर्ट के मामले

रजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य,

26 फ़रवरी 2015

सलविन्दर कौर नामक एक युवा महिला की शादी अपीलार्थी रजिंदर सिंह से 1990 में हुई थी। शादी के चार साल के भीतर ही 31 अगस्त 1993 को सलविन्दर कौर ने एल्यूमिनियम फास्फाइड पी लिया, जो एक कीटनाशक है, जिसके परिणाम स्वरूप उसका युवा जीवन बुझ गया। उसी दिन, उसके पति, उनके बड़े भाई और बड़े भाई की पत्नी के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई गई। निचली अदालत ने अभियोजन और बचाव पक्ष के सबूत की जांच के बाद अपीलार्थी के बड़े भाई और उसकी पत्नी को बरी कर दिया लेकिन धारा 304B के तहत अपीलकर्ता को दोषी करार दिया और उसे सात साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई जो उक्त धारा के तहत अपराधी घोषित होने पर न्यूनतम सजा है। यह विशेष रूप से पी.डब्ल्यू.2- करनैल सिंह, मृतक महिला के पिता, पी.डब्ल्यू.3- गुलजार सिंह, उनके बड़े भाई और पी.डब्ल्यू.4- बलविंदर सिंह, गांव के सरपंच के सबूत की जांच के बाद किया गया था। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने विवादित निर्णय के द्वारा दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की।

इस मामले के तथ्य सदियों से इस देश की महिलाओं के खिलाफ की जा रही दो बड़ी सामाजिक बुराइयों में से एक के संबंध में सवाल उठाते हैं। हमारे सामने प्रस्तुत तथ्यों में, एक युवा महिला कीटनाशक पी लेती है जिसे उस परिवार के द्वारा पैसे की बार-बार मांग के द्वारा ऐसा करने के लिए प्रेरित किया गया जहां वह अपनी पहचान मिला देने वाली थी।

बचनी देवी बनाम हरियाणा राज्य (2011) 4 SCC 427

कांता की मृत्यु उसकी शादी के 3 महीने के भीतर हो गई। 11 अगस्त 1990 को, वह प्रतिवादी के घर में पंखे से फांसी लगाकर मृत पायी गयी थी। कांता गरीब परिवार से थी। उसके पिता, पाले राम (पी.डब्लू.8) एक रिक्शावाला है। ए-2 और कांता की शादी 12 मई, 1990 को हुई थी। कांता की मौत से करीब 20 दिन पहले ए-1 पी.डब्लू.8 के घर गया था और उसे कहा कि उसका बेटा ए-2 दूध बेचने का व्यवसाय शुरू करना चाहता है और इसके लिए शहर में दूध ले जाने के लिए मोटरसाइकिल की आवश्यकता है।

उसने ए-2 के लिए मोटर साइकिल की मांग की जिसे पी.डब्लू.8 ने खरीदना था। पी.डब्लू. 8 उसकी मांग को स्वीकार नहीं किया और ए-1 को बताया कि उसकी मांग के अनुसार मोटरसाइकिल खरीद करने की स्थिति में नहीं था। ए-1 ने पी.डब्लू. 8 को चेतावनी दी कि यदि वह ए-2 को मोटर साइकिल नहीं दे पाया, तो कांता को अपने ससुराल में नहीं रहने दिया जाएगा। पी.डब्लू.-8 ने अमर सिंह (पी.डब्लू.10) और माम चंद (DW-1) को अपने घर बुलाया और ए-1 की मांग के बारे में उन्हें बताया। ए-1 ने उनकी उपस्थिति में मांग की और चेतावनी को दोहराया और पी.डब्लू.8 के घर से चल दी।

यह कांता के अंत की शुरुआत थी। ए-1 और ए-2 ने उसे परेशान करना और दुर्यवहार करना शुरू कर दिया। रक्षाबंधन से कुछ पांच दिन पहले, ए-2 कांता को पी.डब्लू.8 के घर लाया। ए-2 ने कांता को वहाँ छोड़ दिया और उसी दिन अपने घर लौट आया। कांता ने पी.डब्लू.8 को ए-1 और ए-2 द्वारा किए जा रहे उत्पीड़न और दुर्यवहार के बारे में बताया। तीन दिन के बाद, ए-2 पी.डब्लू.8 के घर गया और उसे बताया कि वह कांता को लेने के लिए आया था क्योंकि उसके भाई की सगाई होने वाली थी। ए-2 ने पी.डब्लू.-8 को आश्वासन दिया कि रक्षाबंधन के दिन वह कांता को लेकर आएगा। तथापि, कांता ए-2 के साथ जाने में इच्छुक नहीं थी क्योंकि वह जानती थी कि उसके ससुराल में कोई सगाई की रस्म नहीं होने वाली थी। उसे आशंका थी कि वह अपने ससुराल गयी, तो उसका जीवन नहीं बच पाएगा। पी.डब्लू.-8 ने ए-2 के साथ जाने के लिए अपनी बेटी को राजी कर लिया क्योंकि उसे उसके साथ पूरा जीवन व्यतीत करना था।

अपने पिता के आग्रह पर, कांता ए-2 के साथ अपने ससुराल चली गयी। रक्षाबंधन के दिन, पी.डब्लू.-8 और परिवार के सदस्य पूरे दिन कांता का इंतजार करते रहे, लेकिन वह नहीं आयी। गाँव वालों ने बताया कि कांता मर गयी है। तब पी.डब्लू.-8 कुछ व्यक्तियों के साथ ए-1 और ए-2 के घर गया और एक कमरे में पड़े कांता के मृत शरीर को देखा। पी.डब्लू.8 को लगा कि कांता की मौत कुछ 2/3 दिन पहले हुई होगी।

कांता की मौत अप्राकृतिक परिस्थितियों में हुई थी, अतः पी.डब्लू.8 ने तुरंत पुलिस को मामले की सूचना दी और उसी दिन (12 अगस्त 1990) धारा 304 B आईपीसी के तहत पुलिस थाना लाडवा में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज की गई। करनैल चंद (पी.डब्लू.-11) ने जांच शुरू करके घटनास्थल का दौरा किया और कांता के मृत शरीर (शव) को पोस्टमार्टम के लिए भी भेजा। डॉ. पी.के. गोयल (पी.डब्लू.-1) ने कांता के मृत शरीर पर पोस्टमार्टम किया। जांच के पूरा होने पर और दफन करने के बाद , ए-1 और ए-2 को धारा 304-बी आईपीसी के तहत मुकदमा चलाने के लिए भेजा गया था।

उच्च न्यायालय ने भी मामले की अच्छी तरह से जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ए-1 और ए-2 ने पी.डब्लू.8 से मोटर साइकिल की खरीद की मांग की थी; यह मांग शादी के दो महीने के भीतर की गई थी और 'दहेज' की एक मांग थी और इस मांग को पूरा नहीं करने पर, कांता को लगातार परेशान और दुर्व्यवहार किया जाने लगा जिसके कारण उसे अपना जीवन समाप्त करने के लिए यह चरम कदम उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा। हम उच्च न्यायालय के उपरोक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं।

पूर्वगामी कारणों से हमें अपील में कोई औचित्य नहीं लग रहा है और यह तदनुसार खारिज की जाती है। ए-1 को दी गई सजा भुगतने के लिए आत्मसमर्पण करने के लिए दो महीने का समय दिया जाता है।

पठान हुसैन बाशा बनाम ए.पी. राज्य, (2012) 599 8 SCC 594

आरोपी पठान हुसैन बाशा की शादी गुंटूर में 23 जून, 2002 को पठान हसीना बेगम (अब मृतक) के साथ हुई थी। यह एक तय विवाह था। शादी के समय अन्य औपचारिकताओं के अलावा यह वादा किया गया था कि पति पक्ष को पत्नी पक्ष की ओर से 25,000 रुपये के दहेज का भुगतान किया जाएगा। इस राशि में से 15,000 रुपए की राशि का भुगतान उसी समय किया गया था और शेष 10,000 रुपये के दहेज का अक्टूबर, 2002 के महीने में भुगतान करने का वादा किया गया था, जिसके बाद शादी हो गई थी।

संसाधनों के अभाव के कारण दुल्हन का पिता, समय के भीतर शेष राशि का भुगतान नहीं कर सका। आरोपी पठान हुसैन बाशा, उसके पिता पठान खादर बाशा और माता पठान नजीर अबी ने दहेज की शेष राशि लाने के लिए उसे मजबूर किया। इस तरह के दबाव के बावजूद वह अपने परिवार से पैसे प्राप्त नहीं कर सकी। यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि दहेज का भुगतान न करने के लिए, आरोपियों ने मृतक को परेशान किया और उसके साथ क्रूरता करने लगे। उन्होंने उसको अपने पीहर भेजने से भी इनकार कर दिया। यह मृतक के द्वारा उसके रिश्तेदारों और बुजुर्गों सहित विभिन्न व्यक्तियों को सूचित किया गया था। वह आरोपियों द्वारा उसके साथ की जा रही क्रूरता को सहन नहीं कर पा रही थी।

वर्तमान मामले में, विश्वसनीय और ठोस सबूत के द्वारा अभियोजन पक्ष ने आरोपी के अपराध को साबित किया है। कोई खंडन भी नहीं किया जा रहा है, अतः अपील के तहत न्यायालयों के निर्णयों में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं है।

उच्च न्यायालय ने पठान खादर बाशा, मृतक ससुर को बरी कर दिया क्योंकि उसके खिलाफ कोई सीधा सबूत नहीं था। उसके बरी किए जाने को सरकार द्वारा हमारे समक्ष चुनौती नहीं दी गई है, अतः हम इस मामले के इस पहलू पर विचार-विमर्श करने की जरूरत नहीं समझते।

आरोपी पठान हुसैन बाशा और पठान नजीर अबी को अदालतों द्वारा ठीक ही अपराध का दोषी पाया है। हम निचली अदालत और उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज समवर्ती निष्कर्षों के साथ असहमत होने का कोई कारण नहीं देखते हैं, लेकिन हम अपीलार्थियों की ओर से उठाए गए तर्क में कुछ तथ्य दिख रहा है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य, सहायक परिस्थितियों, आरोपी की आयु और यह तथ्य कि वे पहले से ही काफी अवधि तक जेल में बंद थे को ध्यान में रखते हुए, कोर्ट सजा की मात्रा के सवाल पर उदार रुख अपनाए। आरोपियों के खिलाफ अपराध साबित कर दिया गया है और सहायक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी सुविचारित राय यह है कि अपीलार्थियों को दी गई सजा कम की जाती है, तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाता है।



नतीजतन, अपीलार्थियों को दस साल का सश्रम कारावास दिया जाता है । अपील उपरोक्त के अनुसार आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

कुलवंत सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य (2013) 4 SCC 177

मामले के तथ्य: तीन अपीलार्थियों को उनके पिता, विरसा सिंह (आरोपी नंबर 1) और भाई तारा सिंह (आरोपी नंबर 3) [मृतक] पर भारतीय दंड संहिता की धारा 148/302 /323/149 के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया था।

यह घटना 13.06.1987 को सुबह करीब 10.30 बजे हुई थी। वैसे, मृतक और अपीलार्थियों के परिवार के एक ही गांव के हैं। उनके पास कृषि भूमि है। पक्षकारों में अपनी-अपनी कृषि भूमि की सीमाओं के संबंध में और अपने-अपने खेत की सिंचाई के संबंध में विवाद थे। घटना के दिन, (मृतक) करतार कौर अपने बेटों अवतार सिंह और बलकार सिंह (पी.डब्लू. 5 और पी.डब्लू. 6) के लिए भोजन लायी जो अपने खेत में काम कर रहे थे। जैसे ही उन्होंने अपना भोजन समाप्त किया, विरसा सिंह (आरोपी नंबर 1) 'तकवा' के साथ, कुलवंत सिंह (अपीलार्थी नंबर 1) और तारा सिंह (आरोपी नंबर 3) दोनों 'कृपाण' के साथ, साहिबा सिंह (अपीलार्थी नंबर 0.2) 'बरछा के साथ' और दरबारा सिंह (अपीलार्थी नंबर 3) 'कापा' के साथ लैस होकर उनके ट्यूब वेल की ओर से मुखबिर और मृतक के पास आये थे। विरसा सिंह ने कथित तौर पर शिकायतकर्ता और मृतक को ललकारा और तैयार होने को कहा कि वे खेतों की सीमाओं को समाप्त करने के लिए और उन्हें सबक सिखाने के लिए आये थे; जिसके बाद पहले मुखबिर प्रताप सिंह, अब मृतक और बलकार सिंह अपनी माँ के साथ खड़े हो गए। अवतार सिंह और बलकार सिंह जिन्होंने क्रमशः पी.डब्लू. 5 और पी.डब्लू. 6 के रूप में खुद की जांच करवाई थी अपनी माँ और भाई को बचाने के लिए आगे आए जिस पर साहिबा सिंह ने अवतार सिंह (पी.डब्लू. 5) के पेट में बरछा से वार किया और दूसरा वार उसकी बाईं जांघ पर किया। आरोपी नंबर 1 ने कथित तौर पर तकवा के कुंद पक्ष को बलकार सिंह (पी.डब्लू. 6) की दाहिने हाथ की पीठ पर मारा।

उपरोक्त घटना में यह स्वीकार किया है कि दरबारा सिंह और विरसा सिंह को भी चोटें लगी थी जो शिकायतकर्ता और उसके भाई को अपनी आत्मरक्षा में करनी पड़ी थी।

उसके बाद आरोपी अपने-अपने हथियारों के साथ वहां से भाग गए और अवतार सिंह (पी.डब्लू. 5) गांव में गया और घटना के बारे में अपने चचेरे भाई हरदीप सिंह को सूचित किया। गांव से एक ट्रैक्टर लाया गया, जिसमें प्रताप सिंह और करतार कौर को फिरोजपुर अस्पताल में लाया गया था। महिला की रास्ते में ही मौत हो गई जबकि प्रताप सिंह को सिविल अस्पताल, फिरोजपुर में भर्ती कराया गया।

अदालत ने कहा: निजी रक्षा के अधिकार का दावा करने को सवाल को घटना की प्रकृति, जिस परिस्थितियों में यह हुआ था और जिस व्यक्ति ने इस तरह के अधिकार का दावा किया है उसने वैध

तरीके से काम किया है या नहीं उस तरीके से देखना चाहिए। इसका निर्णय करते समय प्रासंगिक हालात को भी देखना चाहिए।

यह सुस्थापित है कि जो व्यक्ति यह तर्क देता है उसे साबित करने की जिम्मेदारी उसी पर होती है। इसे साबित करने के प्रयोजन के लिए, आरोपी गवाहों से जिरह की और कोई सकारात्मक सबूत पेश करने के अलावा अभियोजन पक्ष द्वारा लायी रिकॉर्ड पर सामग्री पर भरोसा कर सकते हैं। एक व्यक्ति को धारा 97 के तहत शरीर की निजी रक्षा का अधिकार है और यह पाया जाता है कि वह ऐसा करने के लिए हकदार था तो उसे भारतीय दंड की धारा 100 के तहत हत्या करने का अधिकार है, बशर्ते कि उसे इसकी उचित आशंका हो कि उसकी मौत हो सकती है या गंभीर चोट लग सकती है।

विरसा सिंह खुद ने अपने चार बेटों के साथ घटना में भाग लिया था। आरोपी के पक्ष में पांच पुरुष सदस्य शामिल थे, जबकि मुखबिर के पक्ष में तीन थे। अपराध कारित करने में इस्तेमाल हथियारों की प्रकृति भी वैसी नहीं थी जिन्हें आमतौर पर धार्मिक कारणों की वजह से साथ ले जाने की आवश्यकता होती है। बरामद भाला और कृपाण भी खून से सने हुए पाये गये। इसलिए हमारी राय है कि उच्च न्यायालय के निष्कर्षों में कोई भी कानूनी कमजोरी मौजूद नहीं है।

उपरोक्त कारणों से, हमारी राय है कि आरोपी आपनी निजी रक्षा के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए मृतक को मार डालने के सबूत के अपने दायित्व का निर्वहन नहीं कर पाए। अपील में कोई भी योग्यता नहीं है और उसे खारिज किया जा रहा है।

रमिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 12 SCC 582 सुरेश सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 16 SCC 353

मामले के तथ्य: दरयाव सिंह (पी.डब्लू.3) और उसके दो बेटों, सज्जन सिंह (मृतक) और गाजे सिंह (पी.डब्लू.5) अपने कपास खेत से जंगली घास की निराई कर रहे थे। आरोपी देवेन्द्र सिंह (आरोपी नंबर 1), सुरेश सिंह (आरोपी नंबर 3), शमशेर सिंह (आरोपी नंबर 5), जय भगवान (आरोपी नंबर 2), जय पाल सिंह (आरोपी नंबर 4), जगबीर सिंह (आरोपी नंबर 6) और राज कुमार (एक किशोर जिसका मामला किशोर न्यायालय में भेजा गया था) वहाँ आये। देवेन्द्र सिंह और जगबीर सिंह फरसों से लैस थे और अन्य चार आरोपी जेली से लैस थे। दरयाव सिंह, सज्जन सिंह और गाजे सिंह चिल्लाने लगे कि वे शिकायतकर्ता पक्ष को सबक सिखाएंगे क्योंकि पूरन की भूमि दरयाव सिंह के बेटों के पक्ष में स्थानांतरित करवा ली है और वे उनके बाजरे की फसलों को भी उखाड़ देंगे। उन्होंने यह भी कहा कि वे शिकायतकर्ता पक्ष को चोट पहुंचाएंगे और पूरन से भूमि प्राप्त करेंगे। पी.डब्लू.3- दरयाव सिंह ने आरोपियों से झगड़ा नहीं करने के लिए और वापस जाने के लिए कहा। आरोपियों ने हालांकि, ऐसा करने से इनकार कर दिया। मृतक सज्जन सिंह और पी.डब्लू.5-गाजे सिंह ने भी आरोपियों से कहा कि गालियाँ देने से बाज आएं, लेकिन आरोपी नं. 6 (अपीलार्थी नंबर 2) ने सज्जन सिंह के सिर पर फरसे से वार कर दिया। आरोपी नंबर 5 ने पी.डब्लू.5 - गाजे सिंह की गर्दन पर जेली से से वार कर दिया। आरोपी नंबर 3-सुरेश सिंह (अपीलार्थी नंबर 1) ने पी.डब्लू.3- दरयाव सिंह के कंधे पर जेली की उलटी तरफ से प्रहार किया। राज कुमार ने भी पी.डब्लू.3- दरयाव सिंह के दाहिने घुटने पर जेली से वार किया। दरयाव सिंह नीचे गिर गया। आरोपी नंबर 2-जय भगवान ने मृतक सज्जन सिंह के कंधे पर जेली से वार किया। आरोपी नंबर 5-शमशेर सिंह ने भी मृतक सज्जन सिंह की पीठ पर जेली से वार किया। आरोपी नंबर 2-जयपाल ने मृतक सज्जन सिंह पर जेली से वार किया। सज्जन सिंह नीचे गिर गया। आरोपी नंबर 1- देवेन्द्र सिंह ने पी.डब्लू.5-गाजे सिंह के बाएं पैर पर फरसे से वार किया। आरोपी नंबर 3-सुरेश सिंह (अपीलार्थी नंबर 1) ने पी.डब्लू.5-गाजे सिंह के कंधे पर जेली से वार किया। आरोपी नंबर 4-जय पाल सिंह ने पी.डब्लू.5-गाजे सिंह पर जेली से वार किया। आरोपी नंबर 5-शमशेर सिंह ने पी.डब्लू.5-गाजे सिंह की पीठ पर जेली से वार किया। घायल ने शोर मचाया जिससे राजबीर और रघबीर का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने घायल को बचाया। तब आरोपी अपने हथियारों के साथ वहां से भाग गए। राजबीर और रघबीर घायल को जनरल अस्पताल, चरखी दादरी ले गए जहां पी.डब्लू.11-डॉ. एस.सी. गुप्ता ने उसी दिन यानी 29 जून 1993 को मृतक दरयाव सिंह की जांच की और निम्नलिखित चोटें पाईं।

अदालत ने कहा: पक्षकारों के विद्वान वकील को सुनने के बाद हमारी राय में, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थियों के खिलाफ अपराध के अनुसंधान की रिकॉर्डिंग में निचली अदालत द्वारा या अपीलीय अदालत के द्वारा कुछ भी गैरकानूनी किया गया है। दोनों अदालतों ने दो घायल चश्मदीद गवाहों, पी.डब्लू.3- दरयाव सिंह और पी.डब्लू.5-गाजे सिंह के ठोस सबूत सहित रिकार्ड में सबूत को माना था

और उन पर विश्वास किया था। चोट लगने की पुष्टि पी.डब्लू. 11 डॉ. एस.सी. गुप्ता के साक्ष्य के माध्यम से की गई है। इसलिए हमारी राय है कि दोनों न्यायालय अपीलार्थियों के खिलाफ अपराध के अनुसंधान की रिकॉर्डिंग में सही थे।

हालांकि, सजा के बारे में, हमारा विचार है कि अपीलार्थियों के विद्वान वकील यह प्रस्तुत करने में सही हैं कि किसी भी अपीलार्थी को धारा 304, भाग II, और आईपीसी के तहत दंडनीय ठोस अपराध के लिए दोषी नहीं पाया गया है। उन दोनों को धारा 149, भारतीय दंड संहिता में उल्लेखित प्रतिनिधिक दायित्व के तहत दोषी ठहराया गया है और उन्हें उसके अनुसार उस अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है, जो आईपीसी की धारा 149 के साथ पठित धारा 304, भाग II के तहत हत्या के लिए दंडनीय अपराध नहीं है। इसलिए, हमारी राय में, न्याय का उद्देश्य तभी पूरा हो पाएगा जब उक्त अपराध के लिए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए सात साल के सश्रम कारावास की बजाय, अपीलार्थी पांच साल का सश्रम कारावास भुगतें। उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों पर अन्य अपराधों की दोषसिद्धि, सजा, और दंड में हस्तक्षेप की जरूरत नहीं है और उसके अनुसार आदेश के उस हिस्से की पुष्टि की जाती है।

पूर्वगामी कारणों के लिए, अपील की आंशिक अनुमति दी जाती है। आईपीसी की धारा 149 के साथ पठित धारा 304, भाग II के तहत दंडनीय अपराध के लिए अपीलार्थियों के खिलाफ उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज दोषसिद्धि को बनाए रखा है, लेकिन उन्हें सात साल के बजाय पांच साल का सश्रम कारावास काटने के आदेश दिए गए। अपील को तदनुसार निपटाया जाता है।

शेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2015 1 SCALE 250 at 262

मृतक, हरजिंदर कौर और आरोपी-अपीलार्थी के बीच शादी 22.2.1997 को हुई थी। अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि अपनी मौत से दो महीने पहले जब वह एक बार पीहर आई तो मृतक ने अपने दो भाइयों को अपने पति और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा दहेज की मांग के साथ उस पर की जा रही क्रूरता के बारे में सूचित किया था। इसके बाद उन्होंने उनके चाचा- शिकायतकर्ता अंग्रेज सिंह को इस जानकारी से अवगत कराया अर्थात् आरोपी और उसके परिवार के लोग मोटरसाइकिल और एक फ्रिज की मांग को लेकर उसे परेशान कर रहे हैं। शिकायतकर्ता ने इस आश्वासन के साथ अपने ससुराल में लौटने की सलाह दी कि उसके भाइयों की शादी के समय मोटरसाइकिल और फ्रिज की व्यवस्था कर दी जाएगी।

अदालत ने कहा: अब, मामला हमारे हाथ में है। हमारे सामने दलील दी गई कि प्राथमिकी दर्ज कराने में 'देरी' की गई थी जैसा कि दोनों निचले न्यायालयों में पहले भी विफल तर्क दिया गया था। समवर्ती विचारों में कोई दुराग्रह नहीं है कि त्रासदी के दस घंटे के बाद अगले दिन यानी 8/02/98 दर्ज कराना कोई अत्यधिक विलंब नहीं है जिसे उचित रूप में बाद सोचा-समझा या काल्पनिक प्राथमिकी के रूप में वर्गीकृत किया जाए। परिवार और दोस्तों के साथ शिकायतकर्ता को दूसरे गांव जाना था; उसे त्रासदी को समझना और प्राथमिकी रिकॉर्डिंग करने से पहले पूछताछ करना और परिस्थितियों पर विचार करना होता था। समान रूप से निरर्थक तर्क यह है कि जब उच्च न्यायालय ने अन्य आरोपियों अर्थात्, दविंदर सिंह (देवर) और जरनैल सिंह (ससुर) को बरी करना ठीक समझा तो पति/अपीलार्थी को भी बरी कर दिया जाना चाहिए था। यह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि आरोपी अपने माता-पिता और भाई के साथ नहीं रह रहा था, और यह उचित है कि पति के परिवार के सदस्यों को फंसाने के लिए मजबूत सबूत की आवश्यकता है। अपीलार्थी के विद्वान वकील ने हमें यह बताने का प्रयास किया है कि इस प्रावधान में वर्णित क्रूरता "उसकी मौत से ठीक पहले" नहीं हुई बताई गई है। इस तर्क से इस आपत्ति के साथ यह मान लिया गया कि सांविधिक क्रूरता, वास्तव में हुई थी। मृतक और अपीलकर्ता की शादी फरवरी, 1997 में हुई थी और मृतक ने एक वर्ष के भीतर ही आत्महत्या कर ली थी; यह मान भी लिया जाए कि यह मौत से ठीक पहले नहीं था तो भी यही कहा जाएगा कि सबल द्वारा मार गिराया गया।

यह विशेष रूप से तब है जब उसने अपने खुद के जीवन को समाप्त करने जैसा चरम कदम उठाया था। इसके साथ ही पंचायत और गुरदीप सिंह की मौजूदगी और ज्ञान के संबंध में पी.डब्लू.4 और पी.डब्लू.7 के बयानों में विसंगतियां और विरोधाभास हैं। इन कारणों से ही हमारी राय यह है कि अभियोजन पक्ष ने यह नहीं दिखाया/प्रस्तुत किया है और/या यहां तक कि संभावनाओं को प्रमुखता से साबित नहीं किया है कि मृतक से दहेज की मांग के आधार पर क्रूरता की जा रही थी। एक संभावना का दायारा यह भी है कि एल्युमिनियम फॉस्फेट आकस्मिक रूप से पी लिया गया हो। हम केवल यह देख सकते हैं कि धारा 313 Cr.PC के तहत अपने परीक्षण में आरोपी ने अपने बचाव का ब्यौरा दिया है। यह वैसा मामला नहीं है जिसमें उसने न्यायालय द्वारा पूछे गए सभी सवालों का खंडन ही किया हो। जैसा कि ऊपर कहा गया है



क्योंकि अभियोजन पक्ष द्वारा दिखाए गए तथ्यों या परिस्थितियों की अपर्याप्त और असंतोषजनक प्रकृति के कारण, अपनी बेगुनाही साबित करने का बोझ वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता पर स्थानांतरित नहीं हो गई है।

इस विश्लेषण में अपील की अनुमति दी जाती है और अपीलकर्ता को दोषी ठहराने और सजा देने के निर्णय को रद्द किया जाता है।

शंकर किशनराव खाड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य, 25 अप्रैल 2013

करीब 11 वर्ष आयु की मृतक, एक नाबालिग लड़की, लखनवाड़ी पर गुणवंत महाराज संस्थान में गुणवंत खंडारे में अपनी दादी (पी.डब्लू.13) के साथ रह रही थी। 20.7.2006 को शाम को दोनों आरोपी संस्थान में आए और वहाँ ठहरे। नाबालिग लड़की को देखकर आरोपी और उसकी पत्नी ने आम की मिठाइयों की पेशकश की। 21.7.2006 की सुबह भी आरोपियों ने उसे मिठाई की पेशकश की है और उस का ध्यान आकर्षित किया। उसी दिन लगभग 12.00 बजे दोनों आरोपी और उसकी पत्नी ने उनके साथ आने के लिए उसे प्रेरित किया और लड़की उनके साथ हो ली। पी.डब्लू.13, बालिका की दादी को पड़ोस में रहने वाली कुछ महिलाओं द्वारा सूचित किया गया था कि उन्होंने लड़की को पहले आरोपी द्वारा पूजा - धूनी नामक जगह की ओर ले जाते देखा है। पी.डब्लू.13 ने ग्राम प्रधान से मुलाकात की और उन्हें और उसके बेटे रमेश (पी.डब्लू.12) को भी इस तथ्य के बारे में सूचित किया, लेकिन लड़की का पता नहीं लगाया जा सका। तथ्यों से पता चला कि लड़की को आरोपियों द्वारा परतवाड़ा में लगने वाले साप्ताहिक बाजार में ले गए और रात में वहाँ रुके और पहले आरोपी ने उस पर बलात्कार किया था और इसे परतवाड़ा के गायत्री मंदिर में दोहराया गया था जहाँ वे 22.7.2006 को ठहरे थे।

अदालत ने कहा: यह प्रथम दृष्टया प्रकट करता है कि राज्य के दो महत्वपूर्ण अंग न्यायपालिका और कार्यपालिका मौत की सजा वाले दंडनीय अपराधों के दोषियों के जीवन से अलग-अलग मानकों के साथ व्यवहार कर रहे हैं। न्यायपालिका द्वारा लागू मानक दुर्लभतम सिद्धांत (भले ही इसके उपयोग में कितना भी व्यक्तिपरक या जज केंद्रित हो सकता है) रियायत देने में कार्यपालिका द्वारा लागू मानक ज्ञात नहीं है। इसलिए, यह हो सकता है (और हुआ भी हो सकता है) कि इस मामले में सत्र न्यायाधीश, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय अपराधी को मौत की सजा देने पर एकमत हैं, किसी अन्य विकल्प पर निश्चित रूप से विचार ही नहीं किया जा सकता, लेकिन कार्यपालिका ने एक बिल्कुल अलग राय ली और मौत की सजा कम कर के उम्रकैद कर दी। भारत के विधि आयोग को भी इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

मेरे विद्वान भाई न्यायमूर्ति राधाकृष्णन के साथ सहमत होते हुए अपीलार्थी की सजा के फैसले को बरकरार रखा जाना चाहिए, लेकिन उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं इस दिशा का समर्थन करता हूँ कि अपीलार्थी को दी गई सभी सजा लगातार चलानी चाहिए।

एजी बनाम शिव कुमार यादव और अन्य 10 सितंबर, 2015

इस मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक तथ्य एक संकीर्ण कम्पास में हैं। 6 दिसंबर, 2014 को, एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई जिसमें पीड़िता ने प्रतिवादी आरोपी पर आरोप लगाया कि उसने कार्यालय से घर लौटने के लिए 5 दिसंबर, 2014 को टैक्सी नंबर DL-1YD-7910 स्विफ्ट डिज़ायर ली थी जिसके ड्राइवर ने उसके साथ बलात्कार किया। अभियोक्त्री (मुद्दई) के बयान को 8 दिसंबर, 2014 को धारा 164 Cr.PC के तहत दर्ज किया गया था। जांच के बाद, 24 दिसंबर, 2014 को आरोप पत्र मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर किया गया था। चूंकि आरोपी का प्रतिनिधित्व किसी वकील द्वारा नहीं किया गया था, अतः उसे कानूनी सहायता वकील प्रदान किया गया। इसके बाद 2 जनवरी 2015 पर, आरोपी ने कानूनी सहायता वकील के स्थान पर अपने निजी वकील मैसर्स आलोक कुमार दुबे और अंकित भाटिया को लगाया। इसके बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द हो गया। 13 जनवरी, 2015 को आरोप तय किए गए थे। अभियोजन पक्ष की गवाही 15 जनवरी 2015 को शुरू हुई और 31 जनवरी 2015 को समाप्त हो गई। आरोपी द्वारा लगाए वकीलों द्वारा गवाहों से जिरह की गई। आरोपी का बयान धारा 313 Cr.PC के तहत 3 फरवरी, 2015 को दर्ज किया गया था। 4 फरवरी 2015 को अभियोक्त्री पी.डब्ल्यू.2 और औपचारिक गवाह पी.डब्ल्यू.-23 को बुलाने के लिए आवेदन दिया गया था जिसने टैक्सी बुक कराई थी, लेकिन उसे अस्वीकार कर दिया गया और इस आदेश को कभी भी चुनौती नहीं दी गई। इसके बाद, 9 फरवरी 2015 को आरोपी ने एक अन्य वकील को लगाया जिसने धारा 311 Cr.PC के तहत 16 फरवरी, 2015 को अभियोजन पक्ष के सभी 28 गवाहों को बुलाने के लिए आवेदन दायर किया। इस आवेदन को निचली अदालत ने 18 फरवरी को खारिज कर दिया था, लेकिन इसे धारा 482 Cr.PC के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर एक याचिका में 4 मार्च 2015 के उच्च न्यायालय के विवादित आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। भले ही आवेदन में वर्णित विशिष्ट आधार पर विचार किया गया था और खारिज कर दिया गया था, लेकिन यह देखा गया कि कुछ गवाहों को बुलाना निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए उचित था।

यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत और धारा 482 Cr.PC के तहत न्यायिक अधीक्षण के अधिकार का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए जब अधीनस्थ अदालत के लिए गए दृष्टिकोण में पेटेंट त्रुटि या सकल अन्याय हुआ हो [47]*। इस आशय के निष्कर्ष के लिए कारण होने चाहिए। वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने आरोपी की प्रार्थना को स्वीकार किया, भले ही निचली अदालत द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं थी, लेकिन यह कहते हुए कि आरोपी को निष्पक्ष और उचित अवसर देने के लिए इस अधिकार का प्रयोग करना आवश्यक था। इस अवलोकन के समर्थन में कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है। इसके विपरीत, आरोपी के रुख को खारिज करने वाले निचली अदालत के दृष्टिकोण की पुष्टि की गई है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष विवादित आदेश में कारणों के साथ असंगत प्रतीत होता है।

परमिंदर लडका पोला बनाम दिल्ली राज्य, 16 जनवरी 2014

तथ्य: बहुत संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि 30.01.2001 को शाम को करीब 8:00 बजे अपने माता-पिता के साथ करीब चौदह वर्ष की एक युवा लड़की ने पुलिस स्टेशन, खजूरी खास, दिल्ली में प्रथम सूचना रिपोर्ट (लघु रूप 'एफआईआर') दर्ज कराई, जिसमें उसने यह कहा: वह उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की छात्रा थी और मकान नंबर 131, गली नंबर 12, खजूरी खास, दिल्ली में अपने माता-पिता के साथ रह रही थी। उनके घर के सामने सरदार जगीर सिंह का घर था। सरदार जागीर सिंह की बेटी, बाबुबो उसकी दोस्त थी और वह बाबुबो से मिलने के लिए सरदार जगीर सिंह के घर जाती रहती थी। 28.01.2001 को शाम को करीब 8.30 बजे, इलाके की बिजली चली गई और सरदार जगीर सिंह के घर पर जनरेटर चालू हो गया, अभियोक्त्री बाबुबो से मिलने चली गई। उसने अपीलार्थी, सरदार जागीर सिंह के बेटे से पूछा कि क्या बाबुबो घर में थी, और अपीलार्थी ने उसे बताया कि बाबुबो कमरे के अंदर थी। जब उसने कमरे के अंदर प्रवेश किया, अपीलार्थी कमरे में उसके पीछे आया और अंदर से कमरा बंद कर लिया और जबरन खाट पर डाल दिया।

अदालत ने कहा: इसलिए यह स्पष्ट है कि जो पर्याप्त और विशेष है वह कई कारकों और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और इस न्यायालय द्वारा कोई पक्का सूत्र निर्धारित नहीं किया गया है। हालांकि, विधायिका चाहती है कि सात साल की न्यूनतम सजा वाले सभी मामलों में कोर्ट पर्याप्त और विशेष कारणों को दर्ज करे। बलात्कार का अपराध करते समय आरोपी के आचरण, अभियोक्त्री की उम्र और अभियोक्त्री पर बलात्कार के परिणाम कुछ ऐसे प्रासंगिक कारक हैं जिन पर न्यूनतम सजा से कम सजा देने के सवाल पर विचार करते हुए कोर्ट को विचार करना चाहिए। वर्तमान मामले के तथ्यों में, हम देखते हैं कि अभियोक्त्री आठवीं कक्षा की छात्रा थी और 28.01.2001 को करीब 14 साल की थी और वह नाजुक उम्र की थी। वह अपनी दोस्त बाबुबो, अपीलार्थी की बहन से मिलने अपीलार्थी के घर गयी थी। जब उसने अपीलार्थी से पूछा कि आरोपी की बहन कहाँ थी, उसने कहा कि वह अंदर कमरे में थी और जब वह कमरे के अंदर चली गयी, तो वह कमरे में उसके पीछा गया और कमरे को अंदर से बंद कर लिया, और जबरन उसे खाट पर डाल दिया। अपीलार्थी ने अभियोक्त्री के सलवार और अंडरवियर निकाल दिए और उसके साथ बलात्कार किया। इस घटना के परिणाम स्वरूप, उसके माता-पिता ने उसका स्कूल जाना बंद कर दिया और निजी तौर पर आठवीं कक्षा का अध्ययन करने को कहा। अभियोक्त्री की उम्र, अपीलार्थी के आचरण और अभियोक्त्री पर बलात्कार के परिणाम को देखते हुए है, हमें नहीं लगता कि भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (1) के तहत न्यूनतम सजा से कम सजा देने के लिए इस मामले में पर्याप्त और विशेष कारण हैं।

मोहम्मद हारून एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 26 मार्च 2014

यहां याचिकाकर्ताओं का यह दावा है कि स्थानीय प्रशासन ने कानून को लागू करने के बजाय लापरवाही के साथ और शायद, कुछ मात्रा में मिलीभगत के साथ न केवल भीड़ को अनुमति दी, बल्कि वह अपनी कार्यवाही की निगरानी करने में भी विफल रहा है। याचिकाओं में कहा गया है कि जाट समुदाय बहुल क्षेत्रों के 50 गांवों में जहां मुस्लिम समुदाय अल्पमत में है दुर्घटना के आवेश में 27.08.2013 से 200 से अधिक मुसलमानों को बेरहमी से मार डाला गया है कि और लगभग 500 अभी भी लापता हैं। याचिकाकर्ताओं का दावा है कि दूरदराज के गांवों में से 40,000 से अधिक लोग धमकी के कारण चले गए और जबरन गांव से बाहर जाने के लिए कहा गया अन्यथा उन्हें मार डाला जाएगा। यह भी आरोप है कि शिशुओं, बच्चों, महिलाओं और बुजुर्गों सहित कई हजार लोग विभिन्न गांवों में भोजन और आश्रय के बिना रह रहे हैं कि, और प्रशासन द्वारा कोई सुविधा उपलब्ध नहीं करायी जा रहा है। इसके अलावा, विशाल अवैध और अनधिकृत हथियार और गोलाबारूद मुजफ्फरनगर और उसके आसपास से बरामद किया गया है। यह भी बताया गया सभी समुदायों के विस्थापित व्यक्तियों को आश्रय शिविरों में रहने के लिए मजबूर किया जा रहा जहां पर्याप्त व्यवस्था अस्तित्व की समस्या बनती जा रही है।

उपरोक्त निर्देशों के साथ, हम हस्तक्षेप आवेदन पत्र सहित सभी मामलों का निपटान करते हैं। तथापि, अगर प्रभावित व्यक्तियों को उपरोक्त निर्देशों को लागू करने में किसी बाधा का पता चलता है, तो उन्हें आज से दो महीने की अवधि के बाद उपरोक्त मामलों में इस अदालत के समक्ष आवेदन दायर कर के अपनी शिकायत को उजागर करने की अनुमति दी जाती है। यह स्पष्ट किया जाता है कि संबंधित जिला अधिकारियों के साथ प्रयास करने के बाद ही, उपरोक्त निपटाए मामलों में इस तरह का आवेदन दाखिल करने के लिए अनुमति दी जाती है। जिन मामलों को इस अदालत में स्थानांतरित नहीं किया गया है और अभी भी इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित हैं उन मामलों में, पक्षकार उपरोक्त निर्देशों के अनुसार ही निपटान के लिए उच्च न्यायालय में जाने के लिए स्वतंत्र हैं।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम मुन्ना शंभू नाथ, 18 सितंबर, 2015

इस अपील का निपटान करने के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अभियोक्त्री (पी.डब्ल्यू.5) का परिवार आरोपी के पिता का किरायेदार था। अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, 5 मई 1991 को 13 साल की अभियोक्त्री अपने घर के गलियारे में अपनी मां के साथ रात में सो रही थी। सुबह करीब 4:30 बजे, प्रतिवादी-आरोपी ने अभियोक्त्री के घर में प्रवेश किया, चाकू की नोंक पर बगल के कमरे में ले गया, दरवाजा बंद कर लिया और उस के साथ बलात्कार किया। अपराध करने के बाद आरोपी और अभियोक्त्री उसी कमरे में रहे। इसके बाद, अभियोक्त्री की मां और बहन अभियोक्त्री की खोज में उस कमरे के पास आए और जब दरवाजा खोला गया था तो आरोपी-प्रतिवादी भाग गया। अभियोक्त्री ने गरहा पुलिस स्टेशन में एफआईआर दर्ज कराई, जिसके बाद जांच अधिकारी ने चिकित्सा जांच के लिए अभियोक्त्री को भेजा, जिसमें डॉ. निशा साहू द्वारा रिपोर्ट सौंपी गई। जांच अधिकारी ने अभियोक्त्री के जन्म की तारीख प्राप्त की। प्रतिवादी-आरोपी 6 मई, 1991 को गिरफ्तार किया गया था। अभियोक्त्री का ऑसिफिकेशन (हड्डी बनने का) टेस्ट किया गया और वर्तमान मामले में रिपोर्ट ने साबित कर दिया था।

किसी आपराधिक मामले में, अपीलार्थी को अनुमानित तिथि के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता जिसका कोई सबूत नहीं हो। एक अनुमानित तिथि के आधार पर दोषसिद्ध करना काफी असुरक्षित हो जाएगा। "रिकॉर्ड पर सबूत और उपरोक्त मामलों में औचित्य को ध्यान में रखते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे यह साबित करने में पूरी तरह से विफल रहा कि घटना के समय लड़की की उम्र 16 साल से कम थी। इसलिए, यह माना जा सकता है कि लड़की की उम्र 16 साल से अधिक थी और अपनी सहमति देने के लिए सक्षम थी जैसी कि उच्च न्यायालय की धारणा थी। इसलिए, वर्तमान मामले में, बलात्कार का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि आम सहमति से संभोग साबित हो गया है।

इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा की रोशनी में, हमारा मत है कि वर्तमान अपील में कोई भी योग्यता नहीं है, और हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं लगता है। अपील, तदनुसार, खारिज की जाती है।

भद्रेश बिपिनभाई सेठ बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 1 सितंबर 2015

अपीलार्थी और प्रतिवादी नंबर 2 (अब से 'अभियोक्त्री' कहा जाएगा) प्रासंगिक समय में पड़ोसी थे और एक दूसरे को जानते थे। 29.05.2001 को, अभियोक्त्री ने सहायक पुलिस आयुक्त, अपराध शाखा, गायकवाड़ हवेली, अहमदाबाद शहर को एक शिकायत में लिखा जिसमें एक समयावधि में अपीलार्थी पर उत्पीड़न का आरोप लगाया था। उसमें अपीलार्थी के खिलाफ लगाए बलात्कार, भावनात्मक ब्लैकमेल और धमकियों के आरोप लगाए गए थे। दो दिन बाद, यानी 31.05.2001 को संबंधित पुलिस स्टेशन के एक पुलिस अधिकारी द्वारा उसका बयान में दर्ज किया गया था जिसमें उसने फिर से दुराचार, ब्लैकमेल आदि के आरोप लगाए थे। तथापि जांच अधिकारी (आईओ) द्वारा दर्ज उसके बयान में से बलात्कार के आरोप सुस्पष्ट रूप से गायब थे। 31.05.2001 को दिए गए बयान के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी और भारतीय दंड संहिता की धारा 506 (2) (आईपीसी) के तहत आरोप वर्ष 2001 में लगाया गया था।

अभियोक्त्री ने इन कार्रवाइयों में नए सबूतों के अवलोकन के लिए एक आवेदन दिया जिसके आधार पर उसने दावा किया था कि अपीलार्थी ने अग्रिम जमानत और नियमित जमानत की शर्तों का उल्लंघन किया है। हमें इस आवेदन में लगाए गए आरोपों में जाने की जरूरत नहीं है। वह जमानत रद्द करने के लिए इस तरह के आवेदन निचली अदालत में देने के लिए स्वतंत्र है। हम स्पष्ट कर दें हम इस आवेदन की योग्यता में नहीं गए हैं, और जब भी इस तरह का आवेदन किया जाता तब निचली अदालत जांच करने और निचली अदालत कानून के अनुसार जो भी उचित समझे वैसा आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है।

इससे पहले कि हम अलग हों, निष्पक्षता को संतुलित करने के लिए, हमारा मत है कि इस मामले की सुनवाई को तेजी से की जाए और निचली अदालत एक वर्ष के भीतर ही पूरा करने का प्रयास करे। परिणामस्वरूप, हम विवादित निर्णय को रद्द करते हैं और उपरोक्त आदेश में उल्लेखित शर्तों पर अपीलकर्ता को अग्रिम जमानत देने के विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश के दिनांक 18.05.2013 के आदेश को बहाल करते हैं। उक्त मामले में अपील की अनुमति दी जाती है।

विक्रम सिंह विक्की व अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 21 अगस्त 2015

यह अपील विशेष अनुमति से कुछ हद तक अजीब परिस्थितियों में पैदा हुई है। अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 और की 364 A के तहत दंडनीय अपराधों को करने के लिए मुकदमा चलाया गया, दोषसिद्ध हुआ और मौत की सजा सुनाई गई। अपील में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा उनकी दोषसिद्धि और सजा पुष्टि की गई थी और अंत में आपराधिक अपील नंबर 1396-1397/ 2008 में इस न्यायालय द्वारा। अपीलार्थियों ने, हालांकि, हौसला नहीं छोड़ा। उन्होंने इस अदालत के समक्ष 2012 की रिट याचिका (Crl.) D No.15177 दायर की थी कि 1993 के अधिनियम 42 के द्वारा जोड़ी गई भारतीय दंड संहिता की धारा 364A को उस हद तक संविधान के अधिकारातीत घोषित की जाए जिसमें किसी दोषी पाये गए व्यक्ति को मौत की सजा का प्रावधान है। याचिकाकर्ता ने आगे निचली अदालत द्वारा याचिकाकर्ता को सुनाई गई मौत की सजा को जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा और इस न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील संख्या 1396-1397/2008 में पुष्टि की गई थी उसे खारिज करने की प्रार्थना की गई थी। याचिकाकर्ता को दी गई सजा को आजीवन कारावास बदलने के निर्देशन के लिए भी परमादेश की प्रार्थना की गई थी। रिट याचिका अंततः इस स्वतंत्रता के साथ वापस ले ली गई कि निवारण के लिए क्षेत्राधिकार वाले उच्च न्यायालय में याचिकाकर्ता जा सकते हैं। अपीलार्थी, इसके बाद, CWP No.18956/2012 के द्वारा चंडीगढ़ में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और भारतीय दंड संहिता की धारा 364 A को हटाने के लिए एक परमादेश और उन्हें दी गई मौत की सजा पर अमल रोकने के लिए एक आदेश की प्रार्थना की गई। अपीलार्थियों का मामला फिर से खोलने और मौत की सजा को आजीवन कारावास की सजा में बदलने की भी रिट याचिका में प्रार्थना की गई थी।

हालांकि, सवाल यह है कि क्या अदालत महज एक काल्पनिक स्थिति पर शुरू की गई चुनौती मुहिम में वास्तविक तथ्यों की अनदेखी करके किसी प्रावधान को हटा सकती है। हमारा जवाब ना में है। हमारी राय में, काल्पनिक स्थितियां धारा 364A पर प्रभाव नहीं डाल सकती। इस मामले में साबित निरा तथ्य मामले को किसी भी कीमत पर इस तरह की काल्पनिक स्थिति के दायरे से बाहर ले जाएगा। हम ऐसा इसलिए कह सकते हैं कि इस मामले में अपीलार्थियों न केवल धारा 364A के तहत, बल्कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के लिए भी दोषी ठहराया गया है। दोनों को दी गई मौत की सजा न्यायोचित, निष्पक्ष और उचित मानी गई और इस न्यायालय द्वारा विकसित और लागू दुर्लभ से भी दुर्लभतम मामलों के मानकों के द्वारा भी। यह वह मामला नहीं है जिसमें पीड़ित अपनी किस्मत से बच गया और अपनी खस्ताहाल कहानी बताने के लिए जीवित रहा। यह वह मामला है जिसमें उसकी हत्या कर दी गई थी जो अदालत को अपीलार्थियों को मौत की सजा देने में भारी पड़ा। हम पहले से ही अन्तिम फैसले में मुकदमेबाजी के इस दौर में नहीं बैठे हैं। हम केवल इससे चिंतित हैं कि जहां तक धारा

364 A के प्रावधान जिसमें मौत या आजीवन कारावास का प्रावधान है क्या अपीलार्थियों द्वारा अपराध की गंभीरता को अधिक दी गई सजा के कारण असंवैधानिक है। उस प्रश्न का हमारा जवाब ना में है। हत्या के मामले में मौत की सजा दुर्लभ हो सकती है, लेकिन अदालत तथ्यों और सबूतों पर विचार करने के बाद उसे लगता है कि केवल यही सजा दी जा सकती है तो हमारे हाथ में है उस तरह की संपार्श्विक कार्यवाही में उस सवाल का फिर से देखना मुश्किल है।

पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 8 मई 2015

मृतक पुणे शहर में एक फ्लैट में अपने बहनोई और बहन, अर्थात् क्रमशः पी.डब्लू.12 और पी.डब्लू.13 के नाबालिग बेटे के साथ रह रही थी। वह पुणे में विप्रो कंपनी की बीपीओ शाखा (लघु रूप, "कंपनी") में एक एसोसिएट के रूप में करीब एक साल से सेवारत थी, जहां वह 23:00-09:00 तक रात पाली में काम करती थी। उस दिन उसका आखिरी दिन हो गया था क्योंकि उसने एक माह पहले अपना इस्तीफा दे दिया था। कंपनी ने अपने कर्मचारियों को उनके आवास से कार्यस्थल पर लाने के लिए और उनके संबंधित काम-पारियों के समापन पर वापस छोड़ने के लिए एक निजी टैक्सी सेवा को काम पर लगा रखा था। इसके अलावा, अपनी महिला कर्मचारियों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कंपनी ने महिला कर्मचारी को ले जाते समय टैक्सी के मालिक के लिए अनिवार्य शर्त रखी थी कि उस वाहन में सुरक्षा गार्ड मौजूद होना चाहिए।

यह सच है कि बलात्कार और हत्या के किसी भी मामले में समाज के लिए आघात होता है, लेकिन सभी तरह के अपराध समाज में तबदीली का कारण नहीं हो सकते। कुछ अपराध अदालत और समुदाय के सामूहिक विवेक को झटका देते हैं। जिन लोगों में उसका विश्वास था उनके द्वारा एक मासूम और असहाय युवा महिला के साथ सामूहिक बलात्कार का जघन्य अपराध, जिसके बाद निर्मम हत्या और छिपाने के सोचे-समझे प्रयास अपराध का ऐसा ही एक उदाहरण है समुदाय और अदालत के सामूहिक विवेक को झटका देता है और खदेड़ता है। इसलिए, उक्त स्थापित सिद्धांत के आलोक में इस न्यायालय को यह तय करने में कोई हिचक नहीं है कि यह मामला 'दुर्लभ से दुर्लभतम' की श्रेणी में आता है जिसमें मौत की सजा के अलावा कोई दूसरी सजा नहीं दी जा सकती। इस अपराध से समुदाय का सामूहिक विवेक इतना हैरान है कि कोई वैकल्पिक सजा देना यानी आरोपियों को आजीवन कारावास की सजा देना न्याय के उद्देश्यों को पूरा नहीं करेगा। दरअसल, यह अन्य संभावित अपराधियों को इस तरह के अपराध करने के लिए लुभाएगा और आजीवन कारावास की कम/हल्की सजा मिल जाएगी।

परिणाम स्वरूप, रिकॉर्ड पर मौजूद पूरे सबूतों निचले न्यायालयों के निर्णयों का काफी विस्तार से गंभीरता पूर्वक मूल्यांकन करने के बाद, हम निचली अदालत द्वारा दर्ज कारणों और उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी-अपीलार्थियों को मौत की सजा की पुष्टि और मंजूरी से सहमत हैं। हमारी सुविचारित राय में, निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और आदेश में कोई भी त्रुटि नहीं है।

इसलिए, इस अपील को खारिज किया जाता है और आरोपी-अपीलार्थियों को सुनाई गई मौत की सजा की पुष्टि की जाती है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश की तदनुसार पुष्टि की जाती है। अपील को तदनुसार उक्त शर्तों पर निपटाने का आदेश दिया जाता है।

दीपक बनाम हरियाणा राज्य, 10 मार्च 2015

अभियोक्त्री (हमारे द्वारा नाम पर रोक लगाई गई है) उस समय करीब 16 साल 3 महीने की एक किशोरी थी। उसकी कोई कोई शैक्षिक पृष्ठभूमि नहीं थी। वह विद्या नंद कालोनी, पानीपत की निवासी थी और अपने माता-पिता और दो छोटी बहनों और तीन भाइयों के साथ रह रही थी। उसका पिता, आबिद एक कारखाने में मजदूर था और उसकी माँ अपने घर में एक छोटी सी किराने की दुकान चला रही थी। अपीलार्थी-आरोपी, अपने बिसवां में एक जवान लड़का भी उसके पड़ोसी के रूप में अपने परिवार के साथ रह रहा था। वह भी अपने घर में अपनी किराने की दुकान चला रहा था।

रुखसाना-अभियोक्त्री की माँ ने तब अपना बयान दिया था कि उसके तीन बेटियाँ हैं - सबसे बड़ी अभियोक्त्री 14 साल के आसपास है। उसका पति मजदूर के रूप में काम कर रहा था और वह एक छोटी सी किराने की दुकान चला रहा था। उसने कहा कि अपीलार्थी (आरोपी), उनके पड़ोसी ने कुछ दिन पहले रात में उनके घर में प्रवेश किया और जब उसने देखा तो वह निकल गया।

हमें बिल्कुल सरल कारण से इस प्रस्तुति में कोई औचित्य नहीं लगता है क्योंकि अपीलार्थी को 7 साल की न्यूनतम अनिवार्य सजा सुनाई गई है। दूसरे शब्दों में, आईपीसी की धारा 376 अपराध साबित होने पर न्यूनतम सजा 7 साल है, जिसे आजीवन कारावास और जुर्माना लगाया जा सकता है। इसलिए, अपीलार्थी को भाग्यशाली महसूस करना चाहिए कि उसे केवल 7 साल की सजा सुनाई गई थी जो अधिक भी हो सकती थी।

चूंकि राज्य ने सजा को बढ़ाने के लिए कोई अपील दायर नहीं की है, इसलिए हमें इस सवाल में जाने की जरूरत नहीं है सिवा इसके कि विद्वान वकील के अपीलार्थी के पूरी तरह से दोष रहित होने के आग्रह को अस्वीकार किया जाता है।

अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील ने अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में इस न्यायालय के निर्णय उदय बनाम कर्नाटक राज्य [(2003) 4 SCC 46] पर अपना आधार रखा था। हमने इस मामले के तथ्यों को देखा है और इस मामले के सबूत के मूल्यांकन के प्रकाश में हमें लगता है कि जिस निर्णय पर अपीलार्थी ने भरोसा किया है वह उसकी मदद नहीं कर सकता। हमारी राय में, इसके तथ्य अलग हैं।

पूर्वगामी चर्चा के प्रकाश में, हमें इस अपील में कोई औचित्य नहीं लगता है यह विफल रहती है और तदनुसार इसको खारिज की जाती है। चूंकि अपीलार्थी 06.01.2012 को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश से जमानत पर है, अतः उसकी जमानत बांड को रद्द किया जाता है और अपनी सजा की शेष अवधि काटने के लिए झट से आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है।

मो. अली गुड्डू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 10 मार्च, 2015

अभियोजन पक्ष का मामला इस प्रकार है, शिकायतकर्ता, श्रीमती अनीसा, पी.डब्ल्यू.-2 ने 3.12.1996 को इस आरोप पर एक लिखित रिपोर्ट दायर की कि 22.11.1996 को आधी रात के आसपास, करीब 14 साल की उसकी बेटी, गुलिस्तां, पी.डब्ल्यू.- 1 शौच के लिए उसके घर से बाहर गई थी लेकिन काफी समय बीतने पर भी वापस नहीं आई। चिंतित हो कर, वह उसकी तलाश करने लगी और उसी समय अली वारिस, अपीलार्थियों में से एक ने उसे बताया कि उसने उसके दरवाजे पर उसकी बेटी को छोड़ा था। इसके बाद, पी.डब्ल्यू.-2 और उनके बेटे अबरार, पी.डब्ल्यू.-4, रिश्तेदारों पड़ोस में और अन्य लोगों में खोज की, लेकिन यह सब निरर्थक साबित हुआ, उसे कुछ गड़बड़ लगा और अंत में उसने पुलिस को सूचित किया है कि अली वारिस और मोहम्मद अली गुड्डू ने उसकी बेटी का अपहरण कर लिया था।

आरोपियों ने अपने अपराध का खंडन किया और ग्राम सभा प्रधान के चुनाव के संबंध में राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण अपने को झूठा फंसाने की गुहार लगाई।

यह उल्लेखनीय है कि इसमें शक की जरा भी गुंजाइश नहीं हो सकती कि अभियोक्त्री के एकमात्र गवाही के आधार पर, यदि स्पष्ट और तिरस्कार से परे है तो दोषसिद्धि आधारित हो सकती है। इस मामले में, निचली अदालत के विद्वान न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने गवाह की गवाही की स्वीकार्यता और विश्वसनीयता का मूल्यांकन किए बिना इस सिद्धांत के साथ खुद को दूर रखा है। वास्तव में, यह कहना अनुचित नहीं होगा कि विवादित फैसले में कुछ भी विश्लेषण किया हो, यह दृष्टिकोण का अनौचित्य का संकेत देता है। अभियोक्त्री का बयान था कि वह एक जगह से दूसरी जगह ले जाई गई और लगभग दो महीने तक विभिन्न घरों रही। उसके द्वारा केवल एक ही स्पष्टीकरण दिया गया कि उसे आरोपियों ने धमकी दी थी। यह उसकी गवाही में नहीं है कि उसे एक ही स्थान तक सीमित रखा गया था। वास्तव में, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से देखा जा सकता है कि उसे जगह-जगह ले जाया गया और कई बार भ्रष्ट किया गया था। इन परिस्थितियों में, चिकित्सा प्रमाण का महत्व बढ़ा जाता है जिसके लिए जांचकर्ता डॉक्टर ने गवाही दी कि गुप्तांगों पर कोई चोट नहीं है।

प्राथमिकी में देरी, गवाहों से जिरह न होना, अभियोक्त्री की गवाही, संबद्ध परिस्थितियां और मेडिकल साक्ष्य अभियोक्त्री की गवाही को स्वाभाविक और सच्चा मानने के लिए विश्वास पैदा करने में संदेह का एक निशान छोड़ता है। यह निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि अभियोक्त्री के सबूत इस तरह के गुणवत्ता के नहीं हैं कि उन पर भरोसा किया जा सके। यह सच है कि कानून का व्याकरण अनुमति देता है कि अभियोक्त्री की गवाही को बिना किसी भी मंडन के बिना किसी पक्के ब्यौरे के स्वीकार किया जा सकता है, इसलिए गर्भवती को छोड़कर उसे घायल गवाह की तुलना में एक उच्च आसन पर रखा जाना है, लेकिन जब कोई कोर्ट सबूत के अध्ययन की जांच के बाद अभियोक्त्री के कथन को स्वीकार नहीं कर

पाती क्योंकि उसकी गवाही पहुंच से बाहर है तो इस तरह के प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य की खोज के लिए आवश्यकता जो उसकी गवाही को को आश्वस्त कर सके।

जैसा वर्तमान मामले में देख सकते हैं कि उसकी गवाही आत्मविश्वास पैदा नहीं कर पा रही , और परिस्थितिजन्य साक्ष्य दूर-दूर तक उसका समर्थन नहीं कर रहे हैं। दोनों के अभाव में, हम यह मानने को मजबूर हैं कि विद्वान परीक्षण न्यायाधीश द्वारा आरोपी-अपीलार्थियों को कथित अपराधों के लिए गलती से दोषी पाया गया है और उच्च न्यायालय से भी वही त्रुटि हो गई जिसने रिकॉर्ड पर सामग्री को फिर से देखे बिना उसका अनुमोदन कर दिया।

परिणामस्वरूप, अपील को स्वीकर किया जाता है, दोषसिद्धि और सजा के आदेश के फैसले को रद्द किया जाता है और चूंकि अपीलार्थी जमानत पर हैं, उन्हें जमानत बांड से छुट्टी दे दी जाएगी।

सतीश कुमार जयंती लाल डबगर बनाम गुजरात राज्य, 10 मार्च 2015

मार्गदर्शक लेजर बीम वाला सर्वोपरि सिद्धांत यह होना चाहिए कि सजा अनुपात में होनी चाहिए। यह सामाजिक चेतना के लिए कानून का जवाब है। एक तरह से यह बुराई को रोकने के लिए समाज के प्रति एक दायित्व है जिसने अदालत में विश्वास जताया है। सजा देते समय अपनी भूमिका और कानून के शासन के लिए श्रद्धा के बारे में खुद को याद दिलाना अदालत की जवाबदेही है। इसे युक्तिसंगत न्यायिक विवेक होना चाहिए न कि एक व्यक्तिगत धारणा या एक नैतिक प्रवृत्ति जतानी चाहिए। लेकिन , अगर घटना के परिणाम स्वरूप उचित सजा नहीं सुनाई गई तो सजा के मौलिक व्याकरण का गला कट जाएगा। कानून इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता ; समाज इसे झेलने नहीं सकता ; और अंतरात्मा की पवित्रता इसे घृणा करती है। पुरानी कहावत "कानून किसी का भी अतीत खोज सकता है " उसे अश्लील ढंग से दबाने नहीं दिया जा सकता और दया के इंद्रधनुष को किसी भी कारण से शासित नहीं करने देना चाहिए। यह सच है, इसका अपना स्थान है , लेकिन, सभी परिस्थितियों में इसे पूरे स्थान पर कब्जा करने नहीं दिया जा सकता है।

पीड़ित, इस मामले में, अभी भी न्याय के लिए गुहार लगा रहा है। हमें नहीं लगता कि संहिता के तहत जुर्माने की राशि या मुआवजे के अनुदान में वृद्धि करना कानून में एक उचित जवाब होगा। धन नखलिस्तान नहीं हो सकता। यह सब मोचन के लिए मुख्य स्थान नहीं ले सकता। प्रकट रूप से अनावश्यक रूप से उदार और अपर्याप्त सजा में हस्तक्षेप , न्यायोचित अधिकार है इसीलिए न्यायालय पीड़ित की पीड़ा और वेदना, अंत में समाज की गुहार के लिए अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता। इसलिए, संतुलन कायम करने के लिए न्याय के मुद्दे के लिए सबसे अच्छा सहायक यह होगा कि प्रतिवादी को निचली अदालत के विद्वान न्यायाधीश द्वारा लगाये जुर्माने के अलावा दो साल के सश्रम कारावास काटने की सजा सुनाई जाए।"

केवल इसलिए कि अपीलार्थी अब शादी शुदा है शायद ही शमन परिस्थिति बनती है। इसी तरह , कि अपीलार्थी यह तर्क नहीं दे सकता कि अभियोक्त्री भी शादी शुदा है और एक बच्चा है और इसलिए , अपीलार्थी से नरम व्यवहार किया जाना चाहिए। यह वह मामला नहीं है जिसमें अपीलार्थी ने अभियोक्त्री से शादी कर ली है। इसके होते हुए भी जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने पहले ही भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत सात साल के सश्रम कारावास की जगह 4 साल की सजा कर दी है। इसलिए, किसी भी तरह, अपीलार्थी किसी भी आगे की दया का हकदार नहीं है। अपील , तदनुसार, विफल रहती है और खारिज की जाती है।

अपीलार्थी को इस अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर रिहा कर दिया गया था। उसे, तदनुसार, शेष सजा काटने के लिए हिरासत में ले लिया जाए।

रवींद्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 26 फ़रवरी 2015

मामले की तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि 24.8.94 को शिकायतकर्ता नर्मदाबाई मजदूरी काम करने के लिए आरोपी रविंद्र के खेत में गयी थी। जब वह लगभग 12 बजे मूंग की फलियां तोड़ रही थी तब, आरोपी रविंद्र उसके पास आया, उसका हाथ पकड़ लिया, उसे नीचे गिरा दिया, और उसकी सहमति के बिना संभोग किया। शिकायतकर्ता चिल्लाई, लेकिन आसपास कोई भी नहीं था। शिकायतकर्ता का पेटिकोट आरोपी के वीर्य से सना हुआ था। बलात्कार करने के बाद आरोपी मौके से फरार हो गया। अभियोक्त्री (पी.डब्लू.1) घर आयी और अपने माता-पिता को घटना सुनाई। उसकी माँ ने उसके मामा, शंकर सिंह (पी.डब्लू.4) और पहाड़सिंह (पी.डब्लू.5) और अभियोक्त्री के पिता को बुलाया। उसी दिन, अभियोक्त्री (पी.डब्लू.1) द्वारा भीकागांव पुलिस स्टेशन में एक प्राथमिकी दर्ज कराई गई। शिकायतकर्ता और आरोपी की चिकित्सकीय जांच श्रीमती वंदना सरकानूनगो (पी.डब्लू.3) द्वारा की गई और रिपोर्ट दे दी गई। आरोपी को 01/09/1994 को गिरफ्तारी मेमो के द्वारा गिरफ्तार किया गया था। अभियोक्त्री और आरोपी के कपड़े एफएसएल को भेजे गये। जांच पूरी होने के बाद धारा 376 आईपीसी के तहत आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, भीकागांव के समक्ष दायर किया गया था जिसे आपराधिक मामला संख्या 590/94 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

पूर्वगामी पैराग्राफ में चर्चा के प्रकाश में, हमारी राय है कि अपीलार्थी का मामला कम सजा देने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (2) (जी) का परन्तुक लागू करने के लिए एक उपयुक्त मामला है क्योंकि घटना 20 साल पुरानी है और पक्षकार शादीशुदा हैं और समझौता कर लिया है, जो पर्याप्त और विशेष कारण हैं। इसलिए, हालांकि हम अपीलार्थी की दोषसिद्धि को बरकरार रखते हैं लेकिन कारावास की सजा को अपीलार्थी द्वारा काटी गई सजा अवधि तक कम करते हैं। अपील को इस हिसाब से निपटाया है।

भावनाभाई भायाभाई पनेला बनाम गुजरात राज्य, 4 फ़रवरी 2015

अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि 19 सितंबर, 2004 को 1330 बजे अपीलार्थी ग्यारह साल की अभियोक्त्री को खोजावाड़ी प्लॉट - गांव जसवंतगढ़, तालुका और जिला अमरेली में ले गया और उसके साथ बलात्कार किया। उसने अभियोक्त्री को धमकी दी कि यदि उसने किसी को भी इस बारे में बताया तो वह उसे मार डालेगा। हालांकि, उसने घटना के बारे में अपनी मां को सूचित किया जिसने रात में घर आने पर अपने पति को इस बारे में बताया। अगली सुबह, अभियोक्त्री को उसके माता-पिता द्वारा सरकारी अस्पताल में ले जाया गया और पीड़िता की मां ने पुलिस स्टेशन में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई है। जांच अधिकारी ने जांच की और अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया। मुकदमे में अभियोजन पक्ष ने अभियोक्त्री, उसकी माँ, चिकित्सा अधिकारी और जांच अधिकारी की जांच की और साक्ष्य के आधार पर निचली अदालत ने पाया कि अभियोजन पक्ष ने मामले को साबित कर दिया है। तदनुसार, निचली अदालत ने भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (2) (एफ) के तहत अपीलकर्ता को दोषी करार दिया और आजीवन कारावास और 10,000 रु. का जुर्माना अदा करने की सजा सुनाई, जुर्माना नहीं देने पर तीन महीने के लिए आरआई काटनी होगी। निचली अदालत ने धारा 357 (3) के तहत पीड़िता को 1,00,000 रु. (एक लाख) का मुआवजा भी दिया। यह निर्देशित किया गया था आरोपी द्वारा मुआवजा नहीं देने पर उसकी संपत्ति बेच कर राशि की वसूली की जाएगी। उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की गई है।

जिस सवाल पर विचार किया जाना है वह सजा देना है। हमें सूचित किया गया है कि अपीलार्थी करीब दस साल से हिरासत में है। हमारा ध्यान दिनांक 27 जुलाई, 2012 के हिरासत प्रमाण पत्र की ओर आकर्षित किया गया है, जिसके अनुसार अपीलार्थी ने सात साल, पांच महीने और दस दिन की सजा पूरी कर ली थी। इसके बाद ढाई वर्ष की अवधि तक चला गया है। इस प्रकार, अपीलार्थी पहले से ही करीब दस साल की सजा काट चुका है।

परिस्थितियों की समग्रता के संबंध में, हमारा विचार है कि न्याय का उद्देश्य तभी पूरा हो पाएगा यदि अपीलार्थी को दी गई सजा को दस साल की सश्रम कारावास कर दी जाए। हालांकि, जुर्माना और मुआवजे की सजा डिफॉल्ट सजा है और मुआवजा के रूप में देय राशि की वसूली की दिशा वही रखी जाती है। तदनुसार आदेश दिया जाता है। अपील का निपटारा किया जाता है।

चरणजीत बनाम पंजाब राज्य

2013 AIR SCW 4105 - बलात्कार

मामले के तथ्य

यह मामला प्राधिकारी या विश्वास की स्थिति में एक व्यक्ति द्वारा बलात्कार से संबंधित है। यह आरोप लगाया गया था कि पुलिस अधिकारियों (अपीलार्थी) ने 09-2-1989 को सुबह 7 पूछताछ के लिए एक K के साथ-साथ शिकायतकर्ता (पी.डब्लू. 3) को उठा लिया, K को उसी दिन में छोड़ दिया, लेकिन शिकायतकर्ता को हिरासत में ले लिया और 09 -2-1989 की रात को पट्टे से उसे यातना दी और उसे बेहोश कर दिया और उसके बाद उसके साथ बलात्कार किया। शिकायतकर्ता के साथ-साथ उसके पिता और उसके दोस्त के बयान ने यह साबित कर दिया कि उसे उसी दिन शाम 6 बजे तक नहीं छोड़ा गया था, बल्कि अगले दिन शाम 4:30 बजे छोड़ा गया था। इस मामले में अदालत द्वारा एक महत्वपूर्ण बिंदु यह नोट किया गया कि दैनिक डायरी रजिस्टर जैसे पुलिस थाने के संबंधित अभिलेखों को अपीलार्थियों द्वारा पेश नहीं किया गया जिसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि शिकायतकर्ता को उसी दिन शाम 6 बजे छोड़ दिया गया था जिस दिन उसे उठाया गया था। बचाव पक्ष द्वारा एक और मुद्दा यह उठाया गया कि इसकी जांच के दौरान कि शिकायतकर्ता किसी के इशारे पर अपीलार्थियों के खिलाफ शिकायत की थी एस.पी. को एक बयान दिया था जिसमें उसने कहा था कि वह अपनी शिकायत पर कोई कार्यवाही नहीं चाहती। अदालत ने यह कहा कि इसे ठोस साक्ष्य नहीं माना जा सकता है क्योंकि उसने अपनी जिरह में कहा था कि उसे पता नहीं था कि उसमें एस.पी. ने क्या लिखा था, और उसे अपना नाम लिखना आता था और अपने हस्ताक्षर करना छोड़कर पंजाबी लिख-पढ़ नहीं सकती थी। इसी प्रकार, अपीलार्थियों द्वारा यह मुद्दा उठाया गया था कि राज्यपाल को अपनी याचिका में शिकायतकर्ता ने यह उल्लेख नहीं किया था कि उसे छोड़ते समय उसके पिता और उसके दोस्त मौजूद थे। यह तय किया गया कि यह बयान ठोस सबूत नहीं था क्योंकि जिरह में उसके सामने रखे ऐसे किसी भी सवाल के अभाव में इस तरह की चूक को उसके साक्ष्य के विपरीत नहीं लिया जा सकता ... अदालत द्वारा लिया गया मुख्य बिंदु कि कथित घटना के बारे में शिकायतकर्ता के बयान में राज्यपाल को अपनी याचिका, मजिस्ट्रेट को दी गई शिकायत, और अदालत में उसके बयान में सामंजस्य था। अदालत ने अपीलार्थियों की सजा में हस्तक्षेप नहीं करने का फैसला किया और 10 साल के सश्रम फैसले को बरकरार रखा।

दीपक गुलाटी बनाम हरियाणा राज्य 2013 AIR SCW 2302 - बलात्कार

इस मामले में, अपीलार्थी और शिकायतकर्ता, जो 19 साल की थी, जो एक दूसरे को जानते थे और कुछ समय से मिल रहे थे। अपीलार्थी ने कुरुक्षेत्र जाने के लिए और शादी करने के लिए उसे प्रेरित किया। यह आरोप लगाया गया था कि रास्ते में, अपीलार्थी उसे कर्णा झील ले गया और उसकी इच्छा के खिलाफ उसके साथ संभोग किया था। इसके अलावा, यह आरोप लगाया गया था कि वह उसे कुरुक्षेत्र ले गया जहां 3-4 दिन तक अपने रिश्तेदारों के साथ रहे और उस के साथ बलात्कार किया। शिकायतकर्ता के मुताबिक, चार दिनों के बाद उसे बाहर फेंक दिया गया था, जिसके बाद उसने एक छात्रावास में शरण ली थी। कुछ दिनों के बाद, छात्रावास की वार्डन को शक हुआ और उसे पूछताछ की। शिकायतकर्ता ने वार्डन को घटना सुनाई और उसने उसके पिता को सूचित किया। इस बीच, शिकायतकर्ता ने छात्रावास छोड़ दिया और एक मंदिर में चली गई, जहां वह फिर से अपीलार्थी से मिली और उसने शादी करने के लिए अंबाला जाने के लिए उसे राजी कर लिया। वे बस स्टैंड पहुंचे तो वहां पुलिस के साथ-साथ उसके पिता भी मौजूद थे और अपीलार्थी को गिरफ्तार कर लिया गया था। इस मामले में विचार के लिए मुख्य मुद्दा यह था कि क्या शादी के झूठे वादे पर शिकायतकर्ता की सहमति प्राप्त की गई थी? सहमति व्यक्त या प्रच्छन्न, मजबूर या गुमराह हो सकती है, इच्छा या धोखे से प्राप्त की जा सकती है - सहमति तर्क पर आधारित है, विवेचना के साथ, मन में तौलते हुए, जैसा कि तुला में होता है, एक तरफ अच्छा और दूसरी तरफ बुरा पक्ष - किसी आरोपी को बलात्कार का दोषी तभी करार दिया जा सकता है, जब कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आरोपी का इरादा बदनीयत वाला था, और उसकी कुछ गुप्त मंशा थी - यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत होना चाहिए कि प्रासंगिक समय पर यानी वहाँ प्रारंभिक स्तर पर ही आरोपी का पीड़ित से शादी करने का अपना वादा निभाने का इरादा नहीं था और इस मामले में अदालत ने फैसला किया कि अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने का हकदार था। शिकायतकर्ता ने अपीलार्थी से शादी करने के लिए अपनी मर्जी से, स्वेच्छा से अपना घर छोड़ा था। प्रासंगिक समय में उसकी उम्र 19 साल थी और, इसलिए, अपीलार्थी से उसकी शादी से होने वाली जटिलताओं और मुद्दों को समझने में सक्षम थी। उसके द्वारा प्रदान घटनाओं के विवरण के अनुसार, शिकायतकर्ता ने उसे दिये नंबर पर अपीलार्थी को यह पूछने के लिए फोन किया था कि वह उनके द्वारा पहले से तय जगह पर उससे क्यों नहीं मिला था। उसने काफी देर तक उसका इंतजार भी किया और वह अंत में जब वह आ गया तो वह उसके साथ कर्णा झील चली गयी, जहां उन्होंने संभोग किया। उसने इस चरण पर कोई आपत्ति नहीं उठाई और किसी से कोई शिकायत भी नहीं की। इसके बाद, वह भी अपीलकर्ता के साथ कुरुक्षेत्र चली गयी जहां वह उसके रिश्तेदारों के साथ रही। यहां पर भी शिकायतकर्ता स्वेच्छा से अपीलार्थी के साथ अंतरंग हुई। फिर, वह किसी कारण से, अवैध रूप से कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के छात्रावास में रहने चली गया, और एक बार फिर से बिरला मंदिर में अपीलार्थी के संपर्क में आयी। इसके बाद, वह अंबाला जाने के लिए कुरुक्षेत्र में पुराने बस स्टैंड के लिए अपीलार्थी के साथ रवाना हुआ ताकि वे दोनों अंबाला की अदालत में शादी कर सकें। हालांकि, यहां वे पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए। यदि शिकायतकर्ता वास्तव में अपीलार्थी के

साथ शादी करने के लिए अंबाला जा रही थी, जो रिकार्ड पर साक्ष्य से पूरी तरह प्रमाणित होता है, तो यह समझना मुश्किल हो जाता है "शादी का झूठा वादा" का आरोप शिकायतकर्ता द्वारा किस आधार पर लगाया गया है। अदालत ने कहा कि वह उन परिस्थितियों को समझने में विफल रहा है, जिसमें उपरोक्त तथ्य स्थिति के आलोक में अपीलार्थी के खिलाफ छल /बलात्कार के आरोप के लगाए जा सकते हैं। उपरोक्त के अनुसार, अदालत की सुविचारित राय थी कि अपीलार्थी पहले ही 3 साल से अधिक की सजा काट चुका है, उसे संदेह का लाभ पाने का हकदार है। इसलिए , अपील सफल रही और अनुमति दी गई थी। निचली अदालतों द्वारा उसकी दोषसिद्धि और सजा को खारिज किया जाता है।

लिल्लु बनाम हरियाणा राज्य 2013 AIR SCW 2987 - बलात्कार

यह बलात्कार का मामला है जिसमें दो मुख्य मुद्दे महत्वपूर्ण थे कि अगर शिकायतकर्ता ने संभोग के लिए अपनी सहमति दे दी हो, तो इस तरह की सहमति का कोई मतलब होगा जबकि शिकायतकर्ता की उम्र 14 वर्ष हो। दूसरा मुद्दा यह था कि क्या जननांग जांच के लिए दो उंगली परीक्षण की प्रथा मान्य थी। अदालत ने अपने फैसले में स्पष्ट किया कि जहां स्कूल रिकॉर्ड के अनुसार शिकायतकर्ता की उम्र 14 वर्ष से कम होना दिखाया गया है, वहां शिकायतकर्ता की सहमति थी या नहीं पूरी तरह सारहीन है। दो उंगली परीक्षण के संदर्भ में, अदालत ने शिकायतकर्ता की इस तरह के परीक्षण के औचित्य, शिकायतकर्ता के पिछले यौन अनुभव और चरित्र की अप्रासंगिकता, और महिलाओं की गरिमा, सम्मान, प्रतिष्ठा, शुद्धता के खिलाफ एक अपराध के रूप में बलात्कार और उनके जीवन के अधिकार जैसे पहलुओं को ध्यान में रखकर सुप्रीम कोर्ट के विभिन्न निर्णयों को मद्दे नजर रखते हुए फैसला सुनाया कि दो उंगली परीक्षण और इसकी व्याख्या बलात्कार उत्तरजीवी की गोपनीयता, शारीरिक और मानसिक अखंडता और गरिमा के अधिकार का उल्लंघन करता है - इस प्रकार, यह परीक्षण रिपोर्ट पाजिटिव होने पर भी, अपने आप ही, सहमति के अनुमान को जन्म नहीं दे सकता।

पुलिस उप महानिरीक्षक बनाम एस. समुथीराम 2012 AIR SCW 6484 - छेड़खानी

यह मामला छेड़खानी से संबंधित है जिसमें एक पुलिस अधिकारी ने शराब के नशे में एक विवाहित महिला के साथ दुर्व्यवहार किया। छेड़छाड़ के मुद्दे के संदर्भ में, अदालत ने दो पहलुओं को देखा। पहला कार्यपालिका और विधायिका की निष्क्रियता के मामले में और सामाजिक समस्या के अंतराल के मामले में विधायिका का इंतजार किए बिना तत्काल सुधारात्मक कार्रवाई करना। जमानत के मामले में भी समस्या का संज्ञान लिया जा सकता है। किसी सार्वजनिक स्थान में एक महिला के साथ तथाकथित दुर्व्यवहार करने वाले पुलिस कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच की वैधता पर विचार करते समय सुप्रीम कोर्ट द्वारा छेड़छाड़ की आम समस्या पर भी विचार किया गया और सुधारात्मक दिशानिर्देश जारी किए गए। एक रोग के रूप में छेड़छाड़, यह तय किया गया कि यह संवैधानिक जनादेश के खिलाफ है। अनुच्छेद 21 का उल्लंघन हुआ क्योंकि महिलाओं की गरिमा का सम्मान नहीं किया गया। अनुच्छेद 15 और 14 का उल्लंघन हुआ क्योंकि छेड़छाड़ नारीत्व के खिलाफ एक लिंग आधारित भेदभाव है। प्रभावी कानून के अभाव में इस सामाजिक बुराई पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। विधायी अपर्याप्तता की वजह से न्यायिक हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 294 और 509 की समीक्षा की गई, लेकिन प्रावधान समस्या से निपटने के लिए पर्याप्त प्रभावी नहीं पाए गए। इसी तरह से तमिलनाडु राज्य द्वारा बनाए गए छेड़छाड़ अधिनियम में भी दांतों की कमी पायी गई। इस समय संसद के समक्ष लंबित यौन उत्पीड़न विधेयक भी समस्या का आंशिक रूप से ही हल करता है - पीड़ितों पर छेड़छाड़ के दर्दनाक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए अन्य बातों के साथ ये दिशा-निर्देश जारी किए जाते हैं:

- महत्वपूर्ण स्थलों पर सीसीटीवी कैमरे लगाना
- महिला हेल्पलाइन की स्थापना
- सादे कपड़ों में महिला पुलिस कर्मियों द्वारा सार्वजनिक स्थानों पर निगरानी।
- सार्वजनिक परिवहन चलाने वालों पर यह जिम्मेदारी दी जाए कि उनके वाहन के अंदर छेड़छाड़ होने पर वाहन को पुलिस स्टेशन ले जाएं। अदालत ने छेड़छाड़ की श्रेणियां भी रेखांकित की हैं।

मो. हारून और अन्य बनाम भारत संघ - संघर्ष के दौरान बलात्कार

यह मामला उत्तर प्रदेश में मुजफ्फरनगर हुए दंगों और इसके सभी पहलुओं से संबंधित है। हमारे काम के उद्देश्य के मुख्य पहलू का संबंध इस तरह के संघर्ष के समय में महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध हैं। इस तरह के अपराधों को रोकने के उपायों पर चर्चा करते हुए अदालत ने जोर देकर कहा कि सांप्रदायिक दंगों/हिंसा के दौरान बलात्कार के संदर्भ में सरकार द्वारा आवश्यक नीतियों को तैयार करने और कार्यान्वयन की आवश्यकता है और विशेष रूप से 2013 के मुजफ्फरनगर दंगों के संदर्भ में अदालत ने कहा कि महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने में यह राज्य (उत्तर प्रदेश) सरकार की स्पष्ट विफलता था और राज्य की जिम्मेदारी है कि वह पीड़ितों को मुआवजा प्रदान करे और उत्तर प्रदेश सरकार को प्रत्येक बलात्कार पीड़ित के पुनर्वास के लिए 5 लाख रुपये मुआवजे का भुगतान करने के लिए निर्देशित किया गया। पीड़ित के लिए राज्य के कर्तव्य के संदर्भ में यह तय किया गया कि इस तरह का कर्तव्य पीड़ित को मुआवजे के भुगतान के साथ समाप्त नहीं हो जाता और प्रत्येक मामले में राज्य द्वारा पीड़ित का पुनर्वास बहुत जरूरी है। पीड़ितों को मुआवजे के भुगतान का एक विशेष उद्देश्य है जो पीड़ितों को कुछ राहत प्रदान करना और पीड़ित के पुनर्वास में मदद करना है। मुआवजे की राशि के निर्धारण के संदर्भ में एक समान राशि के लिए कोई कठोर सूत्र विकसित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अलग-अलग होता है। असली अपराधियों के खिलाफ राज्य (उत्तर प्रदेश) पुलिस की ओर से निष्क्रियता और पीड़ितों के पुनर्वास और सुरक्षा की दिशा में उदासीन रवैये के आरोपों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए अदालत ने राज्य सरकार की ओर से दायर बलात्कार के मामलों के संबंध में की गई कार्रवाई की रिपोर्ट की मांग की और यह आश्वासन भी दिया गया कि सभी आरोपियों को गिरफ्तार करने और सभी बलात्कार पीड़ितों को सुरक्षा मुहैया कराने में राज्य प्रभावी कदम उठाएगा।

पंचानंद मंडल बनाम झारखंड राज्य (2013) 9 SCC 800 - दहेज हत्या

यह मामला दहेज हत्या के मुद्दे से संबंधित है जिसमें मरते समय की घोषणा के अनुसार पीड़िता को कथित तौर पर जला कर मार दिया गया था और उसने पहले अपने भाई को बताया था जो इस मामले में मुखबिर है, कि उसके ससुराल में हमेशा दहेज के रूप में एक गाय और एक अंगूठी की मांग के लिए धमकाया जाता रहता है और कभी-कभी उसके साथ मारपीट भी की जाती है। अदालत ने दहेज हत्या को स्थापित किए जाने वाले मूल तत्वों को दोहराया: (i) महिला की मौत सामान्य परिस्थितियों की तुलना में जलने या घातक चोट या अन्य वजह से होनी चाहिए; और (ii) ऐसी मौत उसकी शादी के 7 साल के भीतर होनी चाहिए, और (iii) उसका उसके पति या उसके पति के किसी भी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न हुआ होना चाहिए। अदालत की इस मामले में राय थी कि दहेज के संबंध में क्रूरता /उत्पीड़न साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत नहीं थे क्योंकि दहेज के लिए उत्पीड़न की कोई विशिष्ट घटना साबित नहीं हुई। मरणसन्न घोषणा विश्वसनीय घोषित नहीं कि गई क्योंकि उसके लेखक पुलिस अधिकारी को साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया गया, और अधिकारी की अनुपस्थिति से आरोपी के सबूत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि वे उससे जिरह करने के अवसर से वंचित रह गए। इसके अलावा, मरणसन्न घोषणा किसी भी चिकित्सा विशेषज्ञ द्वारा प्रमाणित नहीं किया गया था कि मृतक बयान देने के लिए चिकित्सकीय रूप से फिट हो गया था और हालांकि, इस तरह का प्रमाण पत्र अनिवार्य नहीं है, लेकिन यह बयान दर्ज करने वाले अधिकारी का कर्तव्य था कि वह उसे दर्ज करता। इसके अलावा, मृतक ने अपनी मरणसन्न घोषणा में दहेज की मांग का कोई भी बयान नहीं दिया, और इसलिए, दहेज हत्या के लिए आवश्यक तत्व पूरे नहीं होने की वजह से दोषसिद्धि को उलट दिया गया।

तुम्माला वेंकटेश्वर राव बनाम एपी राज्य (2014) 2 SCC 240- दहेज हत्या

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी ने 12.02.2003 को पीड़ित से शादी की थी और वह जुलाई 2003 में पांच महीने के बाद उसके साथ रहने के लिए गयी थी, लेकिन चार दिनों के भीतर ही वापस आ गई और अपने परिवार को सूचित किया कि आरोपी दो लाख रुपये के अतिरिक्त दहेज के लिए शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से उसे परेशान कर रहा है और पीड़ित ने अपने घर में आत्महत्या करने का इरादा व्यक्त किया। पीड़िता के पिता ने 23.10.2003 को दीवाली के मौके पर अपीलार्थी को अपने घर में आमंत्रित किया लेकिन उसने आने से मना कर दिया। शाम करीब 7:30 बजे जब परिवार त्योहार मना रहा था तब, पीड़िता ने कीटनाशक पी लिया। विचार का मुख्य बिंदु यह था कि "उसकी मौत से ठीक पहले" शब्द की व्याख्या कैसे की जाए। अदालत ने अपनी राय दी कि इस शब्द के बारे में सुप्रीम कोर्ट की लगातार यह राय थी इसका मतलब मौत से तुरंत पहले नहीं लगाया जाए। संसद द्वारा मौत से तुरंत पहले शब्द का उपयोग उस क्रूरता या उत्पीड़न के लिए किया गया है जिसकी वजह से मौत निकट आई और मौत का कारण माना जाना चाहिए। यह प्रावधान इस शब्द को से पहले किसी भी समय और न ही तुरंत पहले काम में लेता है और इसके असली तात्पर्य के अनुसार अर्थ लगाना चाहिए। कीटनाशक पीकर पत्नी द्वारा आत्महत्या के मुद्दे के संदर्भ में, मौत से ठीक पहले मृतक पत्नी पर दहेज की मांग के सिलसिले में आरोपी पति द्वारा क्रूरता और उत्पीड़न करने को प्रमाणित करने के लिए दिए गए सबूत पर्याप्त और विश्वसनीय हैं। इसके अलावा, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के संबंध में उत्पन्न किसी अनुमान को गलत साबित करने के लिए दोषमुक्ति संबंधी सबूत नहीं है और अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी।

मोदिन साब कासिमसाब बनाम कर्नाटक राज्य (2013) 4 SCC 551- दहेज हत्या

यह मामला दहेज हत्या से संबंधित है। अपीलार्थी की शादी 21 अप्रैल 1997 को मृतका से हुई थी। उसने 29 मार्च 1998 को आत्महत्या कर ली। मामला दर्ज किया गया और पुलिस निरीक्षक (दहेज विरोधी सेल) द्वारा जांच की गई और अपीलार्थी और अपीलकर्ता की मांग के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 498 ए और धारा 34 के पठित 304 बी के साथ ही दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3, 4 और 6 के तहत अपराधों के लिए आरोप पत्र दायर किया गया था। विचार का मुख्य बिंदु यह था कि दहेज का अपराध कब हुआ माना जाए और उसके लिए आवश्यक घटक क्या हैं। अदालत ने स्पष्ट किया कि धारा 304-बी के तहत एक अपराध के रूप में दहेज हत्या के संदर्भ में दहेज की मांग दुल्हन/पत्नी की मौत के लिए आसन्न ले जाना चाहिए। दहेज की अनिवार्य आवश्यकता यह है कि इसकी मांग शादी के सिलसिले में की जानी चाहिए। अदालत ने कहा कि धारा 498-ए के तहत अपराध हुआ है क्योंकि दहेज की विशेष मांग की गई है। केवल संपत्ति या मूल्यवान सुरक्षा जरूरत की अवैध मांग के संबंध में उत्पीड़न/क्रूरता दहेज की मांग नहीं हो सकती। इस मामले में एक विशेष राशि (ऋण के पुनर्भुगतान के लिए) की मांग के संबंध में दुल्हन का उत्पीड़न प्रमाणित हुआ है न कि दहेज के संबंध में। इस राशि का भुगतान न करने पर उसके पति द्वारा उत्पीड़न करने पर आत्महत्या का मामला भी प्रमाणित हुआ है। अंत में तथ्य यह है कि शादी के समय आरोपी पति को दहेज के रूप में नकद, सोना और अन्य सामान देना भी प्रमाणित हुआ है। धारा 498-ए के तहत पति की दोषसिद्धि बकरार रखी गई, जबकि धारा 304-बी के तहत खारिज कर दिया गया। शादी के समय दहेज की मांग करने के लिए दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3, 4 और 6 को भी बनाए रखा गया है।

सीमा लेपचा बनाम सिक्किम राज्य (2013) 11 SCC 641- यौन उत्पीड़न

यह मामला कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के बारे में विशाखा (1997) 6 SCC 241 और मेधा कोतवाल लेले, (2013) 1 SCC 311 में बनाए दिशा निर्देशों के कार्यान्वयन के संदर्भ में यौन उत्पीड़न के मुद्दे से संबंधित था।

इस मामले में अदालत ने राज्य सरकार को निर्देश दिया कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा तय किए गए दिशा निर्देशों के अनुपालन में उसके द्वारा जारी अधिसूचनाओं और आदेशों को व्यापक प्रचार देने के लिए वह हर दो महीने के बाद राज्य में अधिकतम संचलन वाले समाचार पत्रों में उन्हें प्रकाशित करे। इसके अलावा व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए हर महीने इसे स्थानीय दूरदर्शन पर दिया जाए। समाज कल्याण विभाग और राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना व आदेशों का व्यापक प्रचार देने के लिए न केवल राज्य के सरकारी विभागों और उसकी एजेंसियों /निकायों बल्कि निजी कंपनियों के लिए भी किया जाएगा।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ कार्यरत महिलाओं के अधिकार के संदर्भ में, मेधा कोतवाल लेले (2013) 1 SCC 311 में दिशा-निर्देश को दोहराया गया कि शिकायत समितियां केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियमावली, 1964 के प्रयोजन के लिए जांच प्राधिकारी होगी और शिकायतों समितियों की रिपोर्ट इन नियमों के तहत जांच रिपोर्ट समझी जाएगा।

श्रीमती शशिप्रवा बिन्धानी बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य, 25 अप्रैल 2012 का उड़ीसा उच्च न्यायालय का फैसला - चुड़ैल (डायन) शिकार

ओडिशा बुद्धिवादी समाज द्वारा उड़ीसा राज्य में डायन-कार्य करने के आरोप पर हत्या के कई मामलों के लिए किए गए आवेदन में यह प्रार्थना की गई थी कि डायन-शिकार के मामलों से निपटने के लिए दिशा निर्देश तैयार करने के लिए राज्य सरकार को निर्देश दिया जाए और इस संबंध में कानून बनने तक इस तरह के शिकार से महिलाओं की रक्षा की जाए। माननीय उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार द्वारा राज्य विधान सभा में उचित बिल लाने तक पालन करने के लिए कुछ दिशा निर्देश पारित किए हैं।

मोहन लाल बनाम पंजाब राज्य (2013) (12) SCC- सामूहिक बलात्कार

यह एक सामूहिक बलात्कार का मामला था जिसमें छात्रा का उसके शिक्षकों द्वारा बलात्कार किया गया था। अदालत ने इस मामले पर विचार-विमर्श किया, तो अभियोजन पक्ष के मामले में कोई त्रुटि नहीं पाई गई और साक्ष्य अधिनियम की धारा 114-ए के तहत अनुमान सही रूप में आकर्षित किया गया है और खंडन नहीं किया गया है और दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी। अभियोक्त्री, और उसके पिता और मां ने लगातार और पुरजोर से बनाए रखा कि अभियोक्त्री का अपीलार्थियों द्वारा बलात्कार किया गया था। हालांकि लंबी मुकदमेबाजी के बीच में ही उसके पिता की मृत्यु होने के कारण अभियोक्त्री और उसकी माँ ने अपने रुख से खुद को अलग कर लिया, और यह जाहिर था कि यह अपीलार्थियों के दबाव में ही हुआ था और रुख में इस तरह के परिवर्तन की अवहेलना की जानी चाहिए। अतः साक्ष्य अधिनियम की धारा 114-ए के तहत धारणा अभी भी आकर्षित की जाएगी। यह भी रिकॉर्ड पर मौजूद था कि इस तरह की धारणा को गलत साबित करने के लिए आरोपी द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया और इसलिए दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी।

गवाह की सुरक्षा और समर्थन के संबंध में अदालत ने तय किया कि गवाहों पर नैतिक और कानूनी बाध्यता है और गवाहों और पीड़ितों को बचाने में समुदाय की एक महत्वपूर्ण भूमिका है ताकि बचाव पक्ष के दबाव/प्रभावित करने के प्रयासों से बचाया जा सके ताकि वे पक्षद्रोही न बन जाएं।

पक्षद्रोही गवाह और इस तरह के बयान की स्वीकार्यता के मुद्दे के संबंध में यह तय किया गया कि पक्षद्रोही गवाह का बयान की जांच इस हद तक की जा सकती है कि वह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करे। वर्तमान मामले में अदालत की राय थी कि निचली अदालत के रिकॉर्ड से बहुत ही खेदजनक अवस्था का पता चलता है, अभियोजन पक्ष या जांच अधिकारी द्वारा गवाहों को मुकर जाने से रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया जबकि यह सुनिश्चित करना उनका पवित्र कर्तव्य है कि गवाहों से जिरह इस तरह से की जाए कि उनके बयान जल्द से जल्द दर्ज किए जाएं उन्हें पूरी सुरक्षा का आश्वासन दिया जाए। यह चौंकाने वाला है कि अभियोक्त्री की मां पक्षद्रोही हो गई और उसने बार-बार अदालत को बताया कि समझौते की बातचीत की गई थी, उस मामले में जिसमें अपीलार्थियों, अभियोक्त्री के शिक्षकों ने उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया था - एक ऐसे मामले में जहां इस तरह का अपराध किया गया था, यह समझ में नहीं आता पक्षकारों के बीच समझौता कैसे हो सकता है कि और अदालत का मत था कि मां का आचरण खुद निन्दाजनक है।

शिक्षकों द्वारा अपनी छात्रा के सामूहिक बलात्कार के मामले के मुख्य मुद्दे के संदर्भ में निचली अदालत ने 10 साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी। अदालत की राय में यह उचित नहीं था क्योंकि यह उम्रकैद की सजा सुनाने के लिए एक उपयुक्त मामला था। पक्षकारों के बीच संबंध पर विचार करते हुए यह 10 साल का सश्रम कारावास चौंकाने वाला है। सभी आरोपियों को आजीवन कारावास की सजा

सुनाने के लिए यह एक उपयुक्त मामला था । दुर्भाग्यवश एक आरोपी J (उसके घर का इस्तेमाल बलात्कार के लिए किया गया था और उसने अपराध के लिए सुविधा प्रदान की थी, दोषी करार आरोपी R की बहन) को हाई कोर्ट ने बरी कर दिया था , और राज्य इसके खिलाफ अपील भी दायर नहीं की थी। आरोपी R ने सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया था और उसकी एसएलपी खारिज कर दी गई थी। इस प्रकार, ऐसे हालात में, यह तय किया गया कि अभियुक्त को सजा बढ़ाने के लिए एक नोटिस भी जारी नहीं किया जा सकता।

डी.एस. ग्रेवाल बनाम विम्मी जोशी 2009 (1) SCALE 54 - यौन उत्पीड़न

वर्तमान मामले में सुप्रीम कोर्ट ने आर्मी पब्लिक स्कूल, पिथौरागढ़ की महिला प्राचार्य, और विम्मी जोशी के यौन उत्पीड़न की घटना से संबंधित है। शिकायतकर्ता ने आवेदन किया और प्रशिक्षु स्नातक शिक्षक नियुक्त किया गया था और बाद में उसे पीजीटी के पद पर पदोन्नत किया गया और फिर स्कूल का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया था। ब्रिगेडियर ग्रेवाल, स्कूल प्रबंधन समिति के अध्यक्ष थे और कर्नल हितेंद्र बहादुर उपाध्यक्ष थे। शिकायतकर्ता ने कहा कि हितेंद्र बहादुर उससे छेड़खानी करते थे और यहां तक कि उसे उसके लिए अपना प्यार कबूल करते हुए पत्र भेजा और उसके लिए इच्छा जताई थी।

उसने ब्रिगेडियर ग्रेवाल को मामले की सूचना दी, लेकिन बताया गया कि शिकायत लिखित में देने पर ही मामले का संज्ञान ही लिया जाएगा। इसके बाद, उसने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की और अदालत यौन उत्पीड़न के निष्कर्ष पर पहुंची और मामले में अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का भी निर्देश दिया। ग्रेवाल और बहादुर ने सुप्रीम कोर्ट में अपील की।

अदालत ने नोट किया कि विम्मी जोशी स्कूल के प्रिंसिपल के रूप में काम कर रही थी और वेतन ले रही थी। आर्मी पब्लिक स्कूल एक सार्वजनिक उद्यम था। जोशी को पत्र द्वारा, और बहादुर की कथित छेड़खानी के द्वारा अपमानित किया गया था। अदालत ने माना कि जोशी के पास यह मानने का उचित आधार था कि उसकी आपत्तियों से रोजगार के सिलसिले में नुकसान हो सकता है, या एक शत्रुतापूर्ण कार्य वातावरण बन सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि न तो जोशी की शिकायतों के निवारण के लिए कोई तंत्र था, और न ही कानून के तहत आवश्यक शिकायत समिति का गठन किया गया था। उसने माना कि कि "अत्यधिक अफसोस" की बात थी सेना शिकायत तंत्र स्थापित करने में विफल रही और विशाखा मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को नजरअंदाज कर दिया था। निर्णय में कहा गया कि प्रथम दृष्टया अपराधी की भूमिका पाने के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है। सेना द्वारा कथित जांच ने हितेंद्र बहादुर दोषमुक्त कर दिया जो पूरी तस्वीर प्रदान नहीं करती है। शीर्ष अदालत ने कहा कि उच्च न्यायालय इस मामले में आगे की जांच के बिना यौन उत्पीड़न का स्पष्ट मामला होने के निष्कर्ष तक नहीं पहुँच हो सकता था।

सुप्रीम कोर्ट ने महिला की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय समिति गठित करने के लिए उच्च न्यायालय के निर्देश दिए। और यौन उत्पीड़न की घटना का पता चलने पर, रिपोर्ट को अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए सेना के अधिकारियों को भेजी जाए। आर्मी पब्लिक स्कूल को प्रबंधन विशाखा मामले में निर्देशित दिशा-निर्देशों का उल्लंघन करने का दोषी ठहराया गया और इस मामले पर किए गए व्यय के लिए जोशी को 50,000 रुपये का भुगतान करने का आदेश दिया गया।

विशाल जीत बनाम भारत संघ 1990 (3) SCC 318- तस्करी

यह फैसला वेश्यावृत्ति में बच्चों की तस्करी के मुद्दे पर भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए प्रमुख निर्णयों में से एक है। यह एक जनहित याचिका जिसमें पेशेवर यौन शोषण के लिए तस्करी के मामलों की जांच केंद्रीय जांच ब्यूरो से कराने के निर्देश देने की मांग दायर की गई थी। याचिका में कहा गया:

- उन पुलिस अधिकारियों के खिलाफ जांच शुरू की जाए जिसके अधिकार क्षेत्र में रेड लाइट क्षेत्र के साथ-साथ देवदासी और जोगिन परंपराएं पनप रही हैं और इस तरह की गलती करने वाले पुलिस अधिकारियों और कानून तोड़ने वालों के खिलाफ आवश्यक कार्रवाई की जाए;
- रेड लाइट क्षेत्र में रहने वाली और "देह व्यापार" में लगी सभी सहनिवासियों को संबंधित राज्यों के सुरक्षात्मक घरों में लाना और उन्हें उचित चिकित्सा सहायता, आवास, जीवन के विभिन्न विषयों में शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करना ताकि वे जीवन को अधिक सम्मानजनक तरीके से जी सकें, और
- उन वेश्याओं के बच्चों, और गलियों में भीख माँगने वाले अन्य बच्चों और "देह व्यापार" में धकेल दी गई लड़कियों को भी सुरक्षात्मक घरों में लाना, या को लाने के लिए और फिर उनका पुनर्वास करना।

मामले की विस्तार से सुनवाई के बाद अदालत को लगा कि उस स्तर पर सीबीआई को मामले का भेजने की कोई जरूरत नहीं थी। हालांकि, कोर्ट ने राज्य और केंद्र सरकारों के संबंध में निर्देश दिए और संबंधित कानून प्रवर्तन एजेंसियों को बाल वेश्यावृत्ति उन्मूलन करने के लिए उचित और त्वरित कार्रवाई करने के लिए निर्देशित किया। न्यायालय ने सरकारों को बाल वेश्यावृत्ति के उन्मूलन के लिए सुझाव देने के लिए सलाहकार समितियों की स्थापना करने, पीड़ित बच्चों के लिए पुनर्वास कार्यक्रम बनाने, पीड़ितों के पुनर्वास के लिए कदम उठाने, लड़कियों और बच्चों की उचित देखभाल और संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए योजनाओं का विकास करने, कार्यक्रमों को ठीक से लागू करना सुनिश्चित करने के लिए अपनी स्वयं की मशीनरी विकसित करने और बारीकी से प्रथागत प्रथाओं को देखने के लिए एक सलाहकार समिति स्थापित करने के भी निर्देश दिए।

प्रेरणा बनाम और महाराष्ट्र राज्य अन्य 2003 (2) BLR 562- अनैतिक तस्करी

यह बंबई उच्च न्यायालय से एक निर्णय है। यह याचिका कुछ व्यक्तियों की हिरासत में नाबालिग लड़कियों को छुड़ाने के बाद दायर की गई जो बचायी गई पीड़ितों के कानूनी संरक्षक होने का नाटक कर रहे थे, लेकिन अदालत में उन्होंने वकीलों द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया जिन्होंने इसी मामले में आरोपी का प्रतिनिधित्व किया था। एक रेड लाइट एरिया से एक छापे और बचाव अभियान के बाद, कई युवा लड़कियों और बच्चों को बचाया गया था, और अपराधियों को गिरफ्तार किया गया था। इन कार्रवाइयों के लंबित रहने के दौरान, 18 साल से कम उम्र वाली लड़कियों को निगरानी घर में रखा गया था। एक वकील ने एक आवेदन दायर किया कि इन बच्चों को इस आधार पर रिहा किया जाना चाहिए कि उन्होंने कोई भी अपराध नहीं किया और इसलिए हिरासत में नहीं लिया जा सकता है। यह वकील आरोपी का भी वकील था।

उसके आवेदन पर, बच्चों को रिहा कर दिया गया। बचाये गए पीड़ितों/वेश्यावृत्ति के जीवित बचे लोगों के साथ काम करने वाले एक गैर सरकारी संगठन, प्रेरणा ने उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की क्योंकि उन्हें चिंता थी कि इन बच्चों को आरोपी को सौंप दिया जाएगा और जहां तक वकील का प्रश्न है यह हितों के टकराव का स्पष्ट मामला था। इस पृष्ठभूमि में, उच्च न्यायालय ने एक आदेश पारित किया जिसमें निम्न निर्देश दिये:

- कोई भी मजिस्ट्रेट 18 वर्ष से कम आयु वाले किसी भी व्यक्ति पर अधिकार क्षेत्र का उपयोग नहीं कर सकते भले ही किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 2 (1) और 2 (d) द्वारा परिभाषित के रूप में उस व्यक्ति को कानून या देखभाल और संरक्षण की जरूरत हो। मजिस्ट्रेट को यथा संभव सबसे पहले 18 वर्ष से कम लगने वाले व्यक्ति की उम्र का पता लगाने के लिए कदम उठाने चाहिए। इस तरह के व्यक्ति की उम्र 18 वर्ष से कम पायी जाए तो मजिस्ट्रेट को ऐसे व्यक्ति के मामले को किशोर न्याय बोर्ड को स्थानांतरित करना होगा यदि कानून की दृष्टि से वह व्यक्ति किशोर है, या बाल कल्याण समिति की नजर में यदि वह व्यक्ति बच्चा है, जिसे देखभाल और संरक्षण की जरूरत है।
- जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 के तहत वेश्यालय से बचाये या सार्वजनिक स्थान में भीख मांगते पाये व्यक्ति को पेश करने पर, उसे उक्त अधिनियम की धारा 17 (2) के तहत सबसे पहले उनकी उम्र पता करनी चाहिए। इस तरह के व्यक्ति की उम्र 18 वर्ष से कम पायी जाए तो मजिस्ट्रेट को ऐसे व्यक्ति के मामले को किशोर न्याय बोर्ड को स्थानांतरित करना होगा यदि कानून की दृष्टि से वह व्यक्ति किशोर है, या बाल कल्याण समिति की नजर में यदि वह व्यक्ति बच्चा है, जिसे देखभाल और संरक्षण की जरूरत है।

- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 के तहत वेश्यालय से बचाये या सार्वजनिक स्थान में भीख मांगते पाये किसी भी किशोर को प्रोबेशन अधिकारी द्वारा जांच पूरी हो जाने के बाद ही रिहा करना चाहिए।
- इस तरह के किशोर को स्पष्ट/अभिभावक की देखभाल और निगरानी में तभी दिया जाना चाहिए जब बाल कल्याण समिति द्वारा ऐसे माता-पिता /अभिभावक को बचाये किशोर की देखभाल और निगरानी के लिए फिट पाया गया हो।
- यदि बचाये किशोर के माता-पिता/अभिभावक की देखभाल और निगरानी नहीं कर पाएं, तो किशोर न्याय (बाल देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का बचाये बच्चे के पुनर्वास के लिए पालन किया जाए।
- कोई वकील अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम , 1956 के तहत बचाये या एक सार्वजनिक स्थान में भीख मांगते पाए जाने पर बाल कल्याण समिति के समक्ष पेश किसी किशोर की ओर से बाल कल्याण समिति के समक्ष पेश नहीं हो सकता । केवल ऐसे किशोर के माता-पिता/अभिभावक को स्वयं के माध्यम से या इस तरह के प्रयोजन के लिए नियुक्त वकील के माध्यम से बाल कल्याण समिति के समक्ष अभ्यावेदन देने की अनुमति दी जाएगी।
- किसी दलाल या वेश्यालय पाल की ओर से पेश होने वाले वकील को अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 के तहत बचाये पीड़ितों के लिए उसी मामले में पेश होने पर रोक लगा दी है।

अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड एवं अन्य बनाम चंद्रिमा दास व अन्य (2000) 2 SCC 465- बलात्कार

रेलवे परिसर में व्यक्तियों के एक समूह द्वारा एक विदेशी नागरिक का सामूहिक बलात्कार किया गया था उनमें से कुछ रेल कर्मचारी थे। उच्च न्यायालय के एक पेशेवर वकील ने पीड़ित के लिए मुआवजे का दावा और हावड़ा रेलवे स्टेशन पर असामाजिक और आपराधिक गतिविधियों को समाप्त करने की राहत दिलाने के लिए रेलवे और पश्चिम बंगाल सरकार के खिलाफ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने पीड़ित के लिए मुआवजे के रूप में दस लाख रुपये की राशि निर्धारित की क्योंकि कि यह राय थी कि यह बलात्कार रेलवे से संबंधित एक इमारत में किया गया था, और रेलवे कर्मचारियों द्वारा बढ़ावा दिया गया था।

रेलवे ने दलील दी कि वह पीड़ित को मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है क्योंकि वह भारतीय नागरिक नहीं थी। यह तर्क भी दिया कि रेल या भारत संघ संबंधित व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराध के लिए अपराध पीड़ित को मुआवजे का भुगतान करने के लिए कि उत्तरदायी नहीं है। इसके अलावा, यह उन व्यक्तियों का एक व्यक्तिगत कृत्य था, अतः उन पर ही मुकदमा चलाया जा सकता है और दोषी पाए जाने पर दंडित किया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया कि पीड़ित पर हुए अपराध के लिए नुकसान का दावा करने के लिए, उपचार निजी क्षेत्र में होती है न कि सार्वजनिक कानून में, और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत, उच्च न्यायालय द्वारा कानूनी तौर पर इस कार्यवाही में कोई मुआवजा नहीं दिया जा सकता वह भी एक पेशेवर वकील के कहने पर जिसका पीड़ित के साथ कोई संबंध नहीं था। न्यायालय ने माना कि यह तर्क कि पीड़ित विदेशी नागरिक थी इसलिए, सार्वजनिक कानून के तहत कोई राहत प्रदान नहीं जा सकती क्योंकि संविधान के तहत उपलब्ध मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं हुआ था भी दो कारणों से विफल हो गया; पहला संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर घरेलू न्यायशास्त्र के आधार पर, और दूसरा सार्वभौम मानव अधिकार घोषणा 1948 पर आधारित पर मानवाधिकार न्यायशास्त्र के आधार पर। पीड़िता भले ही इस देश की नागरिक नहीं थी लेकिन जहां तक 'जीवन के अधिकार' का सवाल है वह नागरिक के रूप में उपलब्ध सभी संवैधानिक अधिकारों की हकदार थी। वह गरिमा के साथ व्यवहार की हकदार थी, और संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटी व्यक्तिगत संरक्षण पाने की भी अधिकारी थी।

किसी दूसरे देश के नागरिक के रूप में, उसके साथ उसकी गरिमा के कम व्यवहार नहीं किया जा सकता, और सरकारी कर्मचारियों के हाथों शारीरिक हिंसा की शिकार नहीं होने दिया जा सकता जिन्होंने उसका शील हरण किया था। इस प्रकार अनुच्छेद 21 के तहत उसे उपलब्ध अधिकारों का उल्लंघन किया गया था। नतीजतन, राज्य को उसे मुआवजे का भुगतान करने का संवैधानिक दायित्व है। इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा उसको मुआवजा देने का पारित निर्णय किसी भी दुर्बलता से पीड़ित नहीं जा सकता है। भारत संघ के जिन कर्मचारियों को रेल चलाने के लिए और रेलवे स्टेशनों सहित उसके प्रतिष्ठानों के प्रबंधन के लिए प्रतिनियुक्त किया जाता है, वे सरकारी तंत्र के आवश्यक घटक हैं। इनमें से कोई भी



कर्मचारी कोई अपकृत्य करता है, तो केंद्र सरकार को उन कर्मचारियों द्वारा किसी व्यक्ति के साथ गलत करने के लिए परोक्ष तौर पर जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, बशर्ते अन्य कानूनी आवश्यकताओं संतुष्ट किया गया हो।

दिल्ली घरेलू कामकाजी महिला फोरम बनाम भारत संघ (UOI) और अन्य 1995 (1) SCC 14 - बलात्कार

दिल्ली घरेलू कामकाजी महिला फोरम मामला एक प्रमुख मामला है जिसने बलात्कार और यौन उत्पीड़न के मामलों में बहुत ही महत्वपूर्ण और आमूल परिवर्तनवादी प्रोटोकॉल निर्धारित किया है। बिहार में रांची (अब झारखंड) से दिल्ली के लिए ट्रेन पर यात्रा करते समय सेना के सात अधिकारियों द्वारा चार महिलाओं का बेरहमी से बलात्कार किया गया। सुप्रीम कोर्ट में यह याचिका दिल्ली में महिला घरेलू श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक समूह द्वारा लायी गयी थी। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में इन महिलाओं का 'असहाय ... नियोक्ताओं और पुलिस की दया पर' के रूप में वर्णन किया। मामले के दौरान एक बिंदु पर वकीलों को एक महिला भी नहीं मिली, हालांकि ऐसे संकेत थे कि वे उत्तर प्रदेश में कहीं पर थी। सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें खोजने में मदद करने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य को दिशा-निर्देश जारी किए हैं, लेकिन राज्य की पुलिस ने सहयोग नहीं किया। एक औरत को बलात्कार के मामलों में जिन जटिलताओं से गुजरना पड़ता है उन्हें और राज्य मशीनरी जिस तरह संचालित होती है उसे समझते हुए, कोर्ट ने बलात्कार के मामलों में निम्नलिखित निर्देश तैयार किए।

- यौन उत्पीड़न के मामलों की शिकायतकर्ताओं को कानूनी प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना चाहिए। यह महत्वपूर्ण है कि वह आपराधिक न्याय प्रणाली से पूरी तरह से परिचित हो। पीड़िता के वकील की भूमिका केवल पीड़िता को कार्यवाही के स्वरूप की व्याख्या करने, उसे मामले के तैयार करने, और पुलिस थाने और अदालत में उसकी सहायता करने की ही नहीं होगी, बल्कि उसे यह मार्गदर्शन भी प्रदान करना है कि अन्य एजेंसियों से विभिन्न प्रकार की सहायता कैसे प्राप्त की जा सकती है; उदाहरण के लिए, मनो-परामर्श या चिकित्सा सहायता के लिए। पुलिस स्टेशन में शिकायतकर्ता के हितों का ध्यान रखने वाला व्यक्ति ही मामले के समापन तक उस का प्रतिनिधित्व करे यह सुनिश्चित करने के लिए सहायता की निरंतरता प्राप्त करना महत्वपूर्ण है;
- कानूनी सहायता पुलिस स्टेशन में ही उपलब्ध करायी जाएगी क्योंकि यौन उत्पीड़न के शिकार पुलिस स्टेशन पर पहुंचने के बाद से ही व्यथित अवस्था में हो सकती है, और इस स्तर पर और बाद में उससे पूछताछ होगी तब एक वकील के मार्गदर्शन और समर्थन से उसकी बड़ी सहायता होगी;
- उससे कोई भी सवाल पूछने से पहले पुलिस का यह कर्तव्य होगा कि पीड़िता को प्रतिनिधित्व करने के उसके अधिकार के बारे में सूचित करे, और पुलिस रिपोर्ट शिकार में यह होना चाहिए कि पीड़िता को बता दिया गया था;

- उन पीड़ितों के लिए इन मामलों में कार्य करने के लिए तैयार अधिवक्ताओं की एक सूची पुलिस थाने में रखी जानी चाहिए जि नके ध्यान में कोई विशेष वकील नहीं हो या खुद का वकील उपलब्ध नहीं हो;
- पुलिस के आवेदन पर, अदालत द्वारा जल्द से जल्द अधिवक्ता नियुक्त किया जाएगा, लेकिन यह सुनिश्चित करने के लिए कि अनुचित देरी के बिना पीड़ितों से पूछताछ की जाती है, अधिवक्ताओं को अदालत की अनुमति मांगने या प्राप्त करने से पहले ही पुलिस थाने में कार्य करने के लिए अधिकृत किया जाएगा;
- बलात्कार के मुकदमे में, जहां तक आवश्यक हो सके पीड़ित की गुमनामी बनाए रखी जानी चाहिए;
- भारत के संविधान के अनुच्छेद 38 (1) के तहत निहित निर्देशक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि आपराधिक चोट मुआवजा बोर्ड स्थापित किया जाए क्योंकि बलात्कार पीड़ितों को अक्सर पर्याप्त वित्तीय घाटा उठाना पड़ता है। उदाहरण के लिए कुछ को इतना आघात लगता है कि वे अपना रोजगार जारी नहीं रख पाती।
- अपराधी की दोषसिद्धि पर अदालत द्वारा पीड़ितों को मुआवजा दिया जाएगा, और आपराधिक चोट मुआवजा बोर्ड द्वारा दिया जाएगा भले ही दोषसिद्ध हुआ है या नहीं। बोर्ड दर्द, पीड़ा, और आघात, गर्भावस्था के कारण आय की हानि के साथ-साथ इस बलात्कार के परिणाम स्वरूप हुए बच्चे के जन्म के खर्च का ध्यान रखेगा।

कोर्ट ने बलात्कार के शिकार लोगों के मुआवजे के लिए एक योजना का मसौदा तैयार करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग के निर्देश दिए।

पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य 1996 (2) SCC 384 बंद कमरे में मुकदमा

यह एक ऐसा मामला है जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने बरी को खारिज कर दिया, आरोपियों को दोषी ठहराया है, और तय किया कि ऐसे मामलों में "बंद कमरे में" सुनवाई अनिवार्य थी। दृढ़ता से यह सुझाव भी दिया गया कि सुनवाई जहां तक संभव हो महिला न्यायाधीशों द्वारा की जानी चाहिए। बचाव पक्ष के वकील द्वारा शिकायतकर्ता से व्यवहार के संबंध में सुप्रीम कोर्ट ने विशेष तौर पर निर्देश दिया कि अदालतों को जिरह के दौरान "मूक दर्शकों" के रूप में नहीं बैठना चाहिए ; बल्कि यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अपराध की शिकार को जिरह के दौरान उत्पीड़न या अपमान करने का साधन नहीं बनने दिया जाए।

सुप्रीम कोर्ट रिपोर्टिंग में देरी के मुद्दे से निपटने में शिकायतकर्ता का सामाजिक संदर्भ लेने के बार में भी सावधान था। यह तय किया गया कि: "अदालतें इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकती कि यौन अपराधों में प्राथमिकी दर्ज करने में देरी करने के विभिन्न कारण हो सकते हैं विशेष रूप से अभियोक्त्री या उसके परिवार के सदस्यों का अनिच्छा पुलिस के पास जाना और उस घटना के बारे में शिकायत करना अभियोक्त्री की प्रतिष्ठा और उसके परिवार का सम्मान का सवाल है ... अभियोक्त्री के व्यवहार ... सबसे स्वाभाविक प्रतीत होता है। निचली अदालत इसकी अनदेखी नहीं कर सकती कि भारत में एक परंपरावादी और रूढ़िवादी समाज में एक महिला ऐसी घटना को स्वीकार तक नहीं करना चाहती, जिससे उसकी पवित्रता पर फर्क पड़ने की संभावना हो, समाज से बहिष्कृत होने का खतरा हो, या समाज के द्वारा नीचा दिखाने के बारे में जानकारी हो। इन परिस्थितियों में परीक्षा केंद्र पर शिक्षकों या अपने दोस्तों को नहीं बताने से उसकी विश्वसनीयता से इनकार भी नहीं किया जा सकता।"

सुप्रीम कोर्ट ने निचली अदालतों को सलाह दी कि पीड़ित लड़की सेक्स की आदी होने पर भी कोर्ट को उसे एक ढीला चरित्र वाली नहीं कहना चाहिए।

बलवंत सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य 1987 (2) SCC 27- बलात्कार

इस मामले में, यह तर्क दिया गया था कि बलात्कार के मामले में शिकायतकर्ता प्रतिरोध करता है जिससे सामान्य रूप से चोट लगती है और यहां ऐसी कोई चोट मौजूद नहीं है तो हो सकता है कि बलात्कार हुआ ही न हो। तथापि, कोर्ट ने कहा कि: "[शिकायतकर्ता] से इस तरह के प्रतिरोध की उम्मीद नहीं की जा सकती जिससे उसका शरीर घायल हो जाए ... यह नहीं कहा जा सकता कि जब भी प्रतिरोध किया जाए, पीड़िता के शरीर पर कुछ चोट लगनी ही चाहिए।"

आंध्र प्रदेश राज्य बनाम गांगुला सत्या मूर्ति 1996 (10) SCC 550 - बलात्कार

एक गरीब असहाय औरत के साथ बलात्कार किया गया और गला घोटकर हत्या कर दी गई थी। प्रतिवादी और वह एक दूसरे को जानते थे, और उसकी मौत की शाम को वह उसके घर आई थी जहां से बाद में उसका शव बरामद किया गया था। प्रतिवादी को पुलिस के समक्ष लाया गया था जिसमें उसने अपने अतिरिक्त न्यायिक इकबालिया बयान में अपराध स्वीकार किया और पीड़िता द्वारा प्रतिवादी को भेजा पत्र पेश किया गया। सत्र अदालत ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर प्रतिवादी को दोषी पाया और उसे दोषी करार दिया। हालांकि, अपील पर उच्च न्यायालय ने दोषी व्यक्ति को बरी कर दिया। राज्य ने उसके बाद सुप्रीम कोर्ट के समक्ष एक अपील दायर की। उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क या था कि मौत जहर खाने की वजह से होने की संभावना थी और अन्य चोटों मौत के बाद दी गई थी। उन्होंने बयान के विवरण और तहकीकात से उत्पन्न सबूत में कुछ फर्क पाया। उन्होंने यह भी माना कि संभोग विवादास्पद था क्योंकि प्रतिरोध के शारीरिक लक्षण पर सवाल उठते रहे हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि हाई कोर्ट ने गला घोटने के अलावा किसी अन्य साधन से मौत होने की संभावना के बारे में अपने फैसले में गलती की है। इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने गलत तरीके से पीड़िता के चरित्र पर एक कलंक डाल दिया था। उच्च न्यायालय के पास निचली अदालत के इस तथ्य के निष्कर्षों को बाधित करने के लिए कोई आधार नहीं था। यह चिंताजनक है कि उच्च न्यायालय ने निचली अदालत द्वारा एक अच्छी तरह से तर्क के निष्कर्ष बाधित करने के लिए "नाजुक" कारणों को आगे बढ़ाने के लिए चुना है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि: "बलात्कार के आरोपी की सुनवाई करते समय न्यायालयों को बड़ी जिम्मेदारी दिखानी चाहिए और इस तरह के मामलों अत्यंत संवेदनशीलता के साथ निपटाना चाहिए। न्यायालयों मामले की व्यापक संभावनाओं पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए न कि मामूली विरोधाभास या नगण्य विसंगतियों पर। इसका इस तथ्य से भी पता चल रहा है कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा और बलात्कार के मामले बढ़ रहे हैं। अंत में, सबूत को पूरे मामले की पृष्ठभूमि की समग्रता में देखा जाना चाहिए न कि अलग-थलग रूप में।"

पी. रथीनम बनाम भारत संघ (UOI) व अन्य, रिट याचिका (आपराधिक)- 1989 supp (2) SCC 716- बलात्कार

इस मामले में मुआवजे के सिद्धांत को लागू किया गया था और बढ़ाया गया था। हालांकि, महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कोर्ट ने तय किया कि सुनवाई लंबित होने पर भी मुआवजा देय होगा। सुप्रीम कोर्ट ने पीड़िता को अंतरिम मुआवजा दिया जबकि सुनवाई अभी भी लंबित थी। न्यायालय ने कहा कि यदि आवश्यक हो पीड़िता अधिक मुआवजे के लिए आवेदन कर सकती है।

विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (1997) 6 SCC 241- यौन उत्पीड़न

यह याचिका राजस्थान में एक सामाजिक कार्यकर्ता के नृशंस सामूहिक बलात्कार के बाद दायर की गई थी जब वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रही थी। कोर्ट ने तय किया कि महिलाएं लैंगिक समानता और यौन उत्पीड़न से मुक्त एक सुरक्षित कार्यस्थल की हकदार हैं, और यह नियोक्ता का कर्तव्य है कि अनाचार की सभी घटनाओं को रोके, निवारण करे और हल करे। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 (1) (जी), 21 और 32, साथ ही अंतरराष्ट्रीय समझौतों और मानदंडों के आधार पर सुप्रीम कोर्ट ने कार्यस्थल पर पालन के लिए दिशा निर्देशों को निर्धारित किया जब तक इस तरह का अन्य कानून लागू नहीं हो जाता। कोर्ट ने निम्न के सहित यौन उत्पीड़न को "अनिष्ट यौन चयनित व्यवहार" (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) के रूप में परिभाषित किया:

- (क) शारीरिक संपर्क और छेड़खानी;
- (ख) यौन संबंध के लिए एक मांग या अनुरोध;
- (ग) यौनिक टिप्पणी;
- (घ) अश्लील साहित्य दिखाना;
- (ई) एक यौन प्रकृति के किसी अन्य अप्रिय शारीरिक, मौखिक या गैर मौखिक आचरण।

कर्मचारियों के अधिकारों की रक्षा करने में मदद करने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न नीतियों, अधिसूचित प्रकाशित और परिचालित करने पर बल दिया।

हालांकि, बाद में एक मामले में, एक अंतरिम आदेश के जरिए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यौन उत्पीड़न शिकायत समिति द्वारा जांच को अंतिम जांच और दुराचार के खिलाफ एक सांविधिक जांच के बराबर माना जाएगा।

परिधान निर्यात संवर्धन परिषद बनाम ए.के. चोपड़ा (1999) 6 SCC 241- कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न

विशाखा के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के तुरंत बाद ही भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए जांच समिति के अधिकारों के संबंध में एक दूसरे मामला आया था। इस मामले में उच्च न्यायालय ने इस आधार पर दोषसिद्धि को खारिज कर दिया कि शारीरिक संपर्क स्थापित नहीं किया गया था। अन्य पहलू जांच समिति के अधिकारों से संबंधित हैं। उच्च न्यायालय ने यह तय किया कि चूंकि अपराध आईपीसी की धारा 354 के तहत एक महिला "शील भंग" करने का प्रयास किया गया था (चाहे आचरण रोजगार के संदर्भ में हुआ था या नहीं, इस अपराध के तहत लाया जा सकता है) शारीरिक संपर्क स्थापित होना जरूरी है। सुप्रीम कोर्ट ने हाई कोर्ट के निर्णय को उलट दिया और निचली अदालत द्वारा दी गई सजा को बहाल कर दिया, यह तय करते हुए कि यौन उत्पीड़न शारीरिक संपर्क शामिल होना जरूरी नहीं है।

एक पर्यवेक्षक ने अपने क्लर्क को परेशान किया और अवांछित यौन छेड़खानी की है, सजा में केवल इसलिए कमी कि पर्यवेक्षक ने कोई शारीरिक संपर्क नहीं किया अनुचित है जब कोई तथ्यात्मक विवाद नहीं है। कोर्ट के शब्दों में, पर्यवेक्षक का आचरण "वास्तविक हमले या स्पर्श के अभाव में अपमानजनक होना समाप्त नहीं हो जाता ..."मायने यह रखता है कि क्या आचरण "अवांछित है।" जबकि आचरण का मूल्यांकन पीड़िता के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, भारतीय संदर्भ में सुरक्षा के तहत निर्धारण का खतरा है कि एक निश्चित आचरण पीड़िता के अतीत यौन इतिहास और आचरण के रूप में "अवांछित" था उनकी विश्वसनीयता नष्ट करने के लिए प्रासंगिक सबूत के रूप में पेश किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, उदाहरण के लिए, क्लर्क की यौन मामलों की अज्ञानता और यह तथ्य कि वह अविवाहित थी, हालांकि अप्रासंगिक है, लेकिन यह प्रमाणित करने में मदद कि उसके पर्यवेक्षक का आचरण "अवांछित" था।

CEHAT बनाम भारत संघ और अन्य AIR 2001 SC 2007-कन्या भ्रूण हत्या

लिंग-चयन की प्रथा को समाप्त करने के प्रयास के रूप में है, 1994 में, भारतीय संसद ने प्रसव पूर्व निदान तकनीक (पीएनडीटी) अधिनियम बनाया। अधिनियम 1996 में अस्तित्व में आया, वहीं पांच साल के बाद तक भी इसे काफी हद तक कार्यान्वित नहीं किया जा रहा था। अक्सर, अपराध करने वाले गैर पंजीकृत आनुवंशिक क्लीनिक या परामर्श केन्द्रों को जो अधिनियम का उल्लंघन करके काम कर रहे थे कि अभियोग चलाने के बजाए एक चेतावनी जारी की गई और कोई कार्रवाई नहीं हुई। चूंकि पीएनडीटी एक्ट को कभी भी ठीक से लागू नहीं किया गया था, अतः केन्द्र और राज्य सरकारों के द्वारा अधिनियम के अनुपालन की मांग करते हुए भारतीय गैर सरकारी संगठनों की ओर से यह याचिका दायर की गई थी। विशेष रूप से, गैर सरकारी संगठनों ने राज्य और जिला स्तरों पर और साथ ही सलाहकार समितियों के भीतर उपयुक्त अधिकारियों को नियुक्त किए जाने की मांग की। यह भी प्रार्थना की गई कि केन्द्र सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित किया जाए कि केंद्रीय सुपरवाइजरी बोर्ड की बैठक अधिनियम के द्वारा निर्देशित हर छह महीने में हो और प्रसव पूर्व लिंग चयन के सभी विज्ञापनों को प्रतिबंधित किया जाए, जिसमें वह तकनीक भी शामिल हो जिसका दुरुपयोग किया जा सकता है।

सुप्रीम कोर्ट में मामला लंबित रहने के दौरान, यह देखा गया कि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ऐसा विकास हो रहा था जिसमें एक व्यक्ति गर्भाधान से पहले लिंग का पूर्व निर्धारण कर सकता है। इस तकनीक का विकास तेजी से हो रहा था और कई डॉक्टर इन परीक्षणों के लिए पक्षकार थे। सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर प्रसव पूर्व परीक्षण के अलावा "पूर्व गर्भाधान" परीक्षण शामिल करने के लिए पीएनडीटी अधिनियम में संशोधन पारित कर दिया।

हेम चंद बनाम हरियाणा राज्य 1994 (6) SCC 727- दहेज

इस मामले में, पत्नी अपने ससुराल में दो महीने तक रही और उसके बाद अपने पीहर लौट आई। उसने शिकायत की कि उसका पति और अधिक दहेज की मांग कर रहा था। दहेज की यह मांग कुछ समय तक जारी रही और दो साल के बाद, पत्नी की गला घोटने से मौत हो गई। इस मामले में निर्धारण के लिए प्रश्न यह पैदा हुआ कि क्या दहेज हत्या से संबंधित भारतीय दंड संहिता की धारा 304 B2 को लागू किया जा सकता है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय जहां यह मामला अंत में सुना गया, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वास्तव में धारा 304B लगाने का मामला था भले ही यह निर्णायक साबित नहीं हुआ कि गला पति ने घोंटा या आत्महत्या की वजह से हुआ। यह तय किया गया कि इन मामलों में महत्वपूर्ण परीक्षण यह समझना है कि मौत दहेज के उत्पीड़न का परिणाम था या नहीं।

डॉ. जी.एम. नटराजन बनाम राज्य और अन्य 1995 Cr.Ij 2728 मद्रास कोर्ट - दहेज

हालांकि यह उच्च न्यायालय का फैसला है, लेकिन यह फैसला इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें वह तरीका तय किया गया है जिसमें सबूत का बोझ आरोपी पर डाला गया है। इस मामले में, दहेज और क्रूरता की मांग को सहन करने में असमर्थ, पत्नी ने शादी के एक साल बाद पुलिस में शिकायत दर्ज कराई। पुलिस के हस्तक्षेप पर, मामले को सुलझा लिया गया था। हालांकि, उत्पीड़न जारी रहा। तीन साल बाद, पत्नी अपने छह महीने के बच्चे के साथ कुएं में कूद गयी। बच्चे को बचा लिया लेकिन पत्नी डूब गयी। हालांकि, यह निर्णायक रूप से प्रमाणित नहीं हो पाया कि पत्नी अपनी मर्जी से कुएं में कूदी थी, या पति द्वारा धक्का दिया गया था। उच्च न्यायालय ने यह कहा कि यह मौत आत्महत्या थी और न कि हत्या, यह साबित करने की जिम्मेदारी आरोपी की है न कि अभियोजन पक्ष की।

पवन कुमार और अन्य बनाम हरियाणा राज्य 1998 (3) SCC 309- दहेज

इस मामले में युगल की शादी 1985 में हुई थी। शादी के दिन से ही दहेज की मांग की जा रही थी। पत्नी पर विभिन्न तरीकों से मानसिक अत्याचार किया गया था। दो साल बाद, पत्नी ने अपनी जीजी और जीजा को बताया कि उसे दहेज के लिए उसके पति द्वारा दुर्व्यवहार किया जा रहा था। अगले दिन, उसने आत्महत्या कर ली। विचारणीय सवाल यह था कि उसकी मौत से पहले शारीरिक यातना का कोई स्पष्ट सबूत नहीं था, फिर भी क्या पति को दहेज हत्या के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने तय किया मानसिक क्रूरता भी क्रूरता है और कहा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304 B की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त आधार था। उसने आगे भी कहा कि दहेज की मांग को शादी से संबंधित होने की जरूरत नहीं है। उसके बाद की गई लगातार मांग भी दहेज की मांग ही होगी।

सानाबोइना सत्यनारायण बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य CA No. 1227 2002 - दहेज

इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने इस दृष्टिकोण की पुनः पुष्टि की कि एक खास वर्ग के दोषियों को दी गई छूट एक रियायत है न कि हकदारी। यह अपील आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा पारित कानून की व्याख्या पर आधारित है जिसमें कुछ श्रेणियों के कैदियों को छोड़कर, क्रमशः सात और दस साल की एक वास्तविक और कुल की सजा काट लेने वाले आजीवन कारावास की सजा वाले सभी दोषी कैदियों को सजा में छूट प्रदान की गई है। अपवादित वर्गों में से एक "धारा 376 और 351 आईपीसी के तहत महिलाओं के खिलाफ अपराध के लिए दोषी ठहराया आजीवन कारावास की सजा सुनाए गए" कैदी शामिल हैं। अपीलार्थी-अपराधी ने पहले यह कहा कि वह कानून (302 और 498-ए आईपीसी) में सूचीबद्ध के अलावा महिलाओं के खिलाफ अन्य अपराधों का दोषी पाया गया था, और दूसरा, दोषियों के इस वर्ग को बाहर करने की वजह से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत भेदभावपूर्ण होगा, अतः उसे भी छूट का लाभ मिलना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने "महिलाओं और बच्चों विशेष रूप से महिला" के खिलाफ अपराधों की वृद्धि हुई को देखते हुए दोषियों के इस तरह के एक वर्ग को छोड़ने के लिए सरकार की तारीफ की और कहा कि "इसलिए वर्गीकरण समाज के व्यापक हित में व्यापक लोक हित में उचित, न्यायिक और जरूरी लगता है", और ... असली उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि समुदाय पर धावा बोलते हैं और मानव जाति, समाज के लिए और राष्ट्रीय हितों के मौलिक मूल्यों का उल्लंघन करते हैं उन्हें अपात्र लाभ नहीं मिलना चाहिए। "

राजस्थान राज्य बनाम हेत सिंह 2003 2 SCC 152, सती

यह फैसला 1987 में राजस्थान में हुए कुख्यात रूप कंवर सती मामले के बाद तीन घटनाओं से संबंधित है। पहली 08.10.1987 को आयोजित एक जन रैली थी ; दूसरी, सती समर्थक हिन्दू धर्म रक्षा समिति , कोटपुतली शाखा द्वारा 20-10-1987 को निषेधात्मक आदेश का उल्लंघन; और तीसरी, 28-10-1987 के अध्यादेश के खिलाफ एक प्रदर्शन , फिर से धर्म रक्षा समिति के नेतृत्व में। सुप्रीम कोर्ट ने उच्च न्यायालय के आदेश उलट दिया जिसने राजस्थान सती (निवारण) अध्यादेश/अधिनियम, 1987 के तहत सभी मुकदमों को खारिज कर दिया था। उच्च न्यायालय ने अपने विश्वास में गलती की थी कि धारा 5 (सती की स्तुति के लिए सजा) और धारा 6 (कुछ कृत्यों को प्रतिबंधित करने के लिए अधिकार) द्वारा विचारित अपराध आवश्यक रूप से अधिव्याप्त हो गए हैं और इन दोनों धाराओं के तहत अभियोजन और सजा दोहरे खतरे के खिलाफ नियम का उल्लंघन है। सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि धारा 5 के तहत; धारा 6 (3) के साथ धारा 6 (1) के तहत; और 6 (3) के साथ पठित धारा 6 (2) के तहत अपराध तीन अलग-अलग अपराध थे, और यह उल्लेख किया कि धारा 5 कृत्य के लिए सजा देती है, जबकि 6 प्रकृति में निवारक है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि सरकारी राजपत्र में प्रकाशित नहीं होने के बावजूद अध्यादेश प्रभावी हो गया था; इसका स्थानीय समाचार पत्रों में और मीडिया में क्रमशः प्रकाशन और प्रसारण जनता की सूचना के लिए पर्याप्त था।

हालांकि, सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बावजूद, इस मामले में शामिल सभी आरोपियों को 31 जनवरी, 2004 को जयपुर में विशेष सती कोर्ट ने बरी कर दिया। इसे व्यापक रूप से न्याय की विफलता माना जा रहा है।

अदालत ने अध्यादेश की व्याख्या इस तरह से की कि स्तुति के सभी कृत्यों को दंडनीय होने के लिए, किसी विशेष घटना के संबंध में होना चाहिए। उसने यहां तक कह दिया कि यदि रूप कंवर सती की घटना नहीं हुई होती, तो सती स्तुति प्रमाणित नहीं किया जा सकता था। महिलाओं के कई समूहों के विरोध प्रदर्शन और मांग के बावजूद राज्य ने अपील दायर नहीं की।

श्रीमती शांति और अन्य बनाम हरियाणा राज्य 1991 AIR 1226 - दहेज हत्या

अपनी पति और ससुराल वालों के हाथों क्रूर बरताव और दहेज उत्पीड़न के बाद पीड़िता श्रीमती कैलाश की मृत्यु हो गई और जल्दबाजी में उसका अंतिम संस्कार कर दिया गया। उसके माता पिता को उसकी मौत के बारे में सूचित नहीं किया गया। यह दावा किया गया था कि मौत प्राकृतिक थी और पीड़िता को दिल का दौरा पड़ा था, लेकिन अदालत ने यह निष्कर्ष निकाला कि जिस तरह से ससुराल वालों ने असामान्य तरीके से कार्य किया उससे यह अप्राकृतिक मृत्यु ही हो सकती है। इसलिए इस मौत ने आईईए की धारा 113-बी के तहत दहेज-मृत्यु का अनुमान आकर्षित किया था। निचली अदालत में अपीलार्थियों को आईपीसी की दोनों धारा 498-ए और 304-बी के तहत दोषी ठहराया गया, लेकिन उच्च न्यायालय ने इस धारणा के तहत धारा 498-ए के तहत दोषसिद्धि को खारिज कर दिया कि दोनों आरोप परस्पर अनन्य थे। यह अपील सुप्रीम कोर्ट में दायर की गई थी जिसमें अपीलार्थियों ने दावा किया था कि चूंकि महिलाओं के प्रति क्रूरता की दोषसिद्धि को खारिज कर दिया गया था, अतः धारा 304-बी के तहत आरोप का एक अनिवार्य तत्व क्रूरता नहीं हो सकता है। न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण गलत था और दो नों अपराध अलग थे, और जबकि क्रूरता दोनों आरोपों का एक अनिवार्य हिस्सा थी, अतः धारा 498 ए के तहत एक निर्धारित समय अवधि थी और उस प्रावधान के तहत आरोप लगाये बिना क्रूरता के लिए धारा 498-ए के तहत दोषी करार दिया जा सकता है, तकनीकी दोष से बचने के लिए दोनों धाराओं के तहत आरोपों तय करना महत्वपूर्ण है। तथापि धारा 304-बी के तहत पर्याप्त सजा दी गई थी, अतः कोर्ट ने पाया कि धारा 498-ए के तहत अलग से कोई सजा देने की जरूरत नहीं है।

इस फैसले में न्यायालय ने आईपीसी की धारा 304-बी के तहत आरोप के लिए चार आवश्यक तत्वों को निर्धारित किया: (1) महिला की मौत जल ने या शारीरिक चोट या सामान्य परिस्थितियों की तुलना में अन्य वजह से होनी चाहिए; (2) इस तरह की मौत उसकी शादी के सात साल के भीतर होनी चाहिए; (3) उस पर उसके पति या उसके पति के किसी भी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न किया जाना चाहिए; (4) इस तरह की क्रूरता या उत्पीड़न दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में होनी चाहिए।

घरेलू हिंसा से संबंधित मामले

वंदना बनाम टी. श्रीकांत और कृष्णमाचारी 2007 (51) सिविल सीसी (मद्रास)

पी.डब्लू.डी.वी.ए. लागू होने से एक साल से भी कम समय में यह मामला आया था। इस मामले में न्यायालय का मत था कि "धारा 2 (एफ) और 2 (एस) की स्वस्थ और सही व्याख्या यह होगी कि शब्द "रहने" या "किसी समय रहा होगा" को "रहने के अधिकार" के दायरे में शामिल किया जाएगा। निर्णय ने अपने पति के घर में रहने के पीड़ित महिला के अधिकार को बरकरार रखा शादी, पति की इस दलील के बावजूद शादी के बाद साझा घर में कभी भी एक साथ नहीं रहे। फैसले में स्पष्ट किया गया कि अधिनियम की धारा 17 के तहत स्त्री का संरक्षण का अधिकार, साझा घर में रहने के लिए उसके अधिकार के साथ सह-मौजूद है और इस पर निर्भर नहीं है कि वह साझा घर में उसकी शारीरिक उपस्थिति थी या नहीं। इस प्रकार, न्यायालय ने तय किया कि, "[ए] जो शादी प्रासंगिक तिथि पर वैध और विद्यमान है, वह अपने आप परिवार चलाने के संयुक्त उद्यम में बराबर के भागीदार के रूप में साझा घर में रहने के लिए पत्नी को अधिकार प्रदान करता है। यदि वैध और विद्यमान के कारण उसे साझा घर में रहने का अधिकार है, तो निश्चित रूप से वह अधिनियम की धारा 2 (एफ) के अर्थ में "घरेलू रिश्ते" में है; और साझा घर में उसकी शारीरिक उपस्थिति या अनुपस्थिति उसके रिश्ते को एक घरेलू रिश्ते से छोटा नहीं कर सकती। "

उच्च न्यायालय ने भी पाया कि हालांकि किराए के लिए एक निश्चित राशि का भुगतान करने के प्रतिवादी पति द्वारा किए गए प्रस्ताव को निष्पक्ष और उचित दिखाई देता है लेकिन पी.डब्लू.डी.वी.ए. के अधीन प्रत्याभूत अधिकार को इस तरह के प्रस्ताव से नकारा नहीं जा सकता भले ही वे कितने भी उचित लगते हों। उसने आगे भी कहा कि इन वर्षों में इस बिंदु पर कानून के विकास से बने उक्त अधिनियमन से यह प्रतीत होता है कि साझा घर में रहने के महिला का अधिकार, मूल रूप से उसके भरण-पोषण के अधिकार के भाग के रूप में कल्पना की गई थी जिसे पी.डब्लू.डी.वी.ए. के आगमन के साथ बढ़ा दिया गया है। इस तरह के सांविधिक अधिकार को इससे निरर्थक नहीं जा सकता कि पत्नी से किराये का आवास देखने को कहा जाए और पति से किराए के भुगतान की मांग की जाए।

सुनील मदान बनाम रचना मदान और अन्य

Crl M.C. 3071/2008

वर्तमान मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के सामने यह सवाल आया कि क्या एक महिला जहां उसका पति रह रहा है उस साझा घर में निवास करने के अधिकार का दावा कर सकती है भले ही उसके पति द्वारा वैकल्पिक निवास की पेशकश की गई हो। न्यायमूर्ति एम.एल. मेहता द्वारा दिये फैसले में न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पी.डब्ल्यू.डी.वी.ए. के अंतर्गत निवास करने का अधिकार प्रदान करने के उद्देश्य पर मनन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पत्नी को निवास का अधिकार प्रदान करने का कारण यह है कि वह पति की कार्यवाही से बेघर नहीं हो जाए। इस उद्देश्य पर सख्ती से टीका करते हुए, उच्च न्यायालय ने कहा कि वह पत्नी के साथ सहमत नहीं हो सकता कि जो पति घर मालिक का था और दोनों के बीच हुई सुलह के मद्देनजर (जिसके आधार पर उसे कुछ संपत्ति मिली थी) को परिसर छोड़ने के लिए निर्देशित किया जा ए और किसी दूर जगह में रहने के लिए कहा जाए विशेष रूप से उसकी इस उम्र में।

उच्च न्यायालय ने उसी तरह के इलाके में एक दो बेडरूम अपार्टमेंट के वैकल्पिक आवास की व्यवस्था करने के पति के प्रस्ताव को न्यायसंगत और उचित पाया। न्यायालय ने कहा कि इस तरह के इंतजाम होने तक उन्हें साझा घर में रहना होगा और वे साथ नहीं रह सकते तो पति को उसी तरह के इलाके में एक दो बेडरूम आवास का बाजार किराया प्रदान करेगा। न्यायालय ने महिला को कार के अनन्य उपयोग के लिए भी निर्देश दिया और भरण-पोषण और बच्चे के लिए शिक्षा के खर्च से संबंधित अन्य मामलों को मजिस्ट्रेट द्वारा निर्धारित किया जाएगा। न्यायालय ने यह भी कहा कि महिला आवश्यक समझे तो प्रतिवादी के साथ रहते हुए संरक्षण आदेश प्राप्त कर सकती थी।

एम. जयम्मा बनाम ए.पी. राज्य आपराधिक याचिका संख्या 3873/2009

वर्तमान मामले में इस अधिनियम के तहत दायर आवेदन को "शिकायत संरक्षण अधिकारी के समक्ष दाखिल की जाए" की टिप्पणी के साथ लौटाने के मजिस्ट्रेट के आदेश को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने पाया कि पी.डब्ल्यू.डी.वी.ए. की धारा 12 यह स्पष्ट है कि महिला, एक संरक्षण अधिकारी या महिला की ओर से कोई अन्य व्यक्ति मजिस्ट्रेट को आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। कोर्ट ने यह भी देखा अधिनियम में प्रदान फॉर्म-II से भी इसकी पुष्टि होती है। इसमें आगे भी पाया गया कि धारा 12 के परन्तुक इतना ही कहता है कि इस तरह के आवेदन पर कोई आदेश पारित करने से पहले मजिस्ट्रेट को घरेलू घटना रिपोर्ट मिली हो तो उस पर ध्यान देना चाहिए। उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता की ओर से दायर आवेदन के लिए स्वीकर करने और कानून के अनुसार आगे बढ़ाने के निर्देश दिए।

मंगेश सावंत बनाम मीनल विजय भोसले आपराधिक रिट याचिका सं. 905/2010

इस मामले में बंबई उच्च न्यायालय को यह निर्धारण करने के लिए कहा गया कि क्या पी.डब्ल्यू.डी.वी.ए. के तहत की गई कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 227 के साथ पठित Cr.PC की धारा 482 के तहत खारिज किया जा सकता है। न्यायमूर्ति ए.एस. ओका ने याचिका को खारिज करते हुए उल्लेख किया कि अधिनियम में केवल दो दंडात्मक प्रावधान हैं। ये हैं धारा 31, जो संरक्षण आदेश का उल्लंघन करने के लिए आपराधिक मंजूरी प्रदान करती है और धारा 33, जो संरक्षण आदेश के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा निर्देशित कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए मना करने के लिए संरक्षण अधिकारी को दंडित किया जा सकता है। न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि पी.डब्ल्यू.डी.वी.ए. के तहत दीवानी, परिवार या अपराध न्यायालय के समक्ष किसी भी कानूनी कार्यवाही की मांग की जा सकती है। उच्च न्यायालय ने तदनुसार निर्धारित किया कि Cr.PC की धारा 482 के तहत अधिकारों का इस्तेमाल पी.डब्ल्यू.डी.वी.ए. के तहत कार्यवाही खारिज करने के लिए नहीं किया जा सकता क्योंकि है कार्यवाही आपराधिक प्रकृति की नहीं हैं और अधिनियम के तहत अधिकारों का इस्तेमाल दीवानी या परिवार न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है।



Centre for Social Justice



**Lawyers
for Change**

CENTRE FOR SOCIAL JUSTICE

C-106, Royal Chinmay, Opp. ICO Pump,
Next to Simandhar Tower; Off Judges' Bungalow Road,
Bodakdev, Vastrapur, Ahmedabad – 380054 Gujarat INDIA
socjust@gmail.com | www.centreforsocialjustice.net